ॐ

जय प्रभो

श्री ज्योतिष्पीठोद्धारक

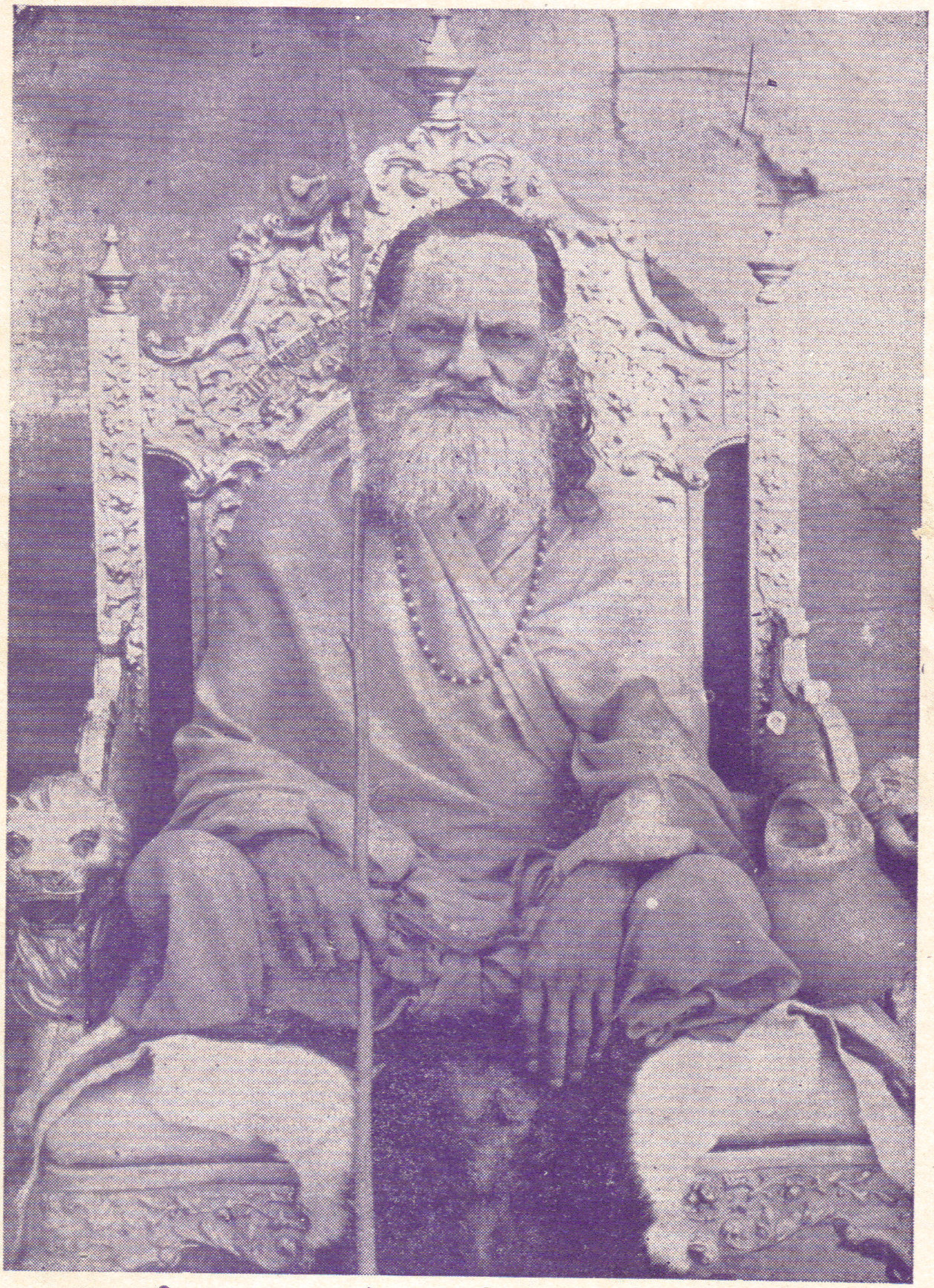

ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर

स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज

ज्योतिर्मठ - बदरिकाश्रम (हिमालय) की

संक्षिप्त - जीवनी

मुद्रक—स्टैन्डर्ड प्रेस, इलाहाबाद ।

❀ हरि: ❀

श्री ज्योतिष्पीठोद्धारक

ब्रह्मलीन जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य

श्री मद् स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज

ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम

की

संक्षिप्त जीवनी

संकलन कर्त्ता—

श्री रामेश्वर प्रसाद तिवारी दारागञ्ज प्रयाग

प्रकाशक--

श्री जगदीश प्रसाद मिश्र अध्यक्ष मिश्रबन्धु

कार्यालय जबलपुर (म० प्र०)

सम्वत् २०२२ आश्विन शु० विजया दशमी मंगलवार

दिनांक ५ अक्टूबर सन् १९६५ ई०

मू० रु० २-७५

प्राक्कथन

जिन महान् विभूति के व्यक्तित्व का वर्णन करने का प्रयास किया जा रहा है, वह केवल उनकी अपरिमित शक्तियों को सीमित दृष्टि से देखना है। वास्तव में जो वाणी से परे का विषय है उसे शब्दों में लाने का प्रयत्न अनधिकार चेष्टा ही है। फिर भी आस्तिक जगत् की उत्सुकता-निवृत्ति के लिये महाराज श्री की पवित्र जीवनी का साधारण परिचय कराने के निमित्त इस कार्य को सम्पन्न करने में हमें हर्ष हो रहा है।

आपका व्यक्तित्व विशुद्ध निर्मल और ज्योतिर्मय था, जिसका दूर से दर्शन ही शान्तिप्रद होता था। तपस्वियों ने उसे तपश्चर्या का साकार रूप कहा, योगियों ने योगतत्व का आगार पाया और शान्त समाहित चित्त महात्माओं ने परम शांति का स्थिर निवास देखा। विरक्तों ने श्री महाराज जी को अपने निवृति-मार्ग का परम आदर्श माना और गृहस्थों ने उनमें अपने प्रवृत्त-पथ का प्रकाश पाया।

श्रीचरण का व्यक्तित्व मानव विकास की उच्चतम अवस्था का प्रतीक था। रेशमी भगवा वस्त्रों से अलंकृत, स्वर्णसिंहासन पर समासीन आपकी स्वाभाविक मुद्रा की छटा अपूर्व होती थी। दर्शन मात्र से आपकी स्वाभाविक कोमलता, सरलता, क्षमा, दया छलकती दृष्टिगोचर होती थी। व्यावहारिक कार्यों में अधिकतर उदासीनता थी, किन्तु साथ ही साथ दृढ़ता भी थी। आपके एक-एक शब्द में ऐसी विद्युत् शक्ति थी, जो श्रोता के हृदय-पटल पर अधिकार जमा लेती थी और उसमें रस मिलता था। जो भी आपके निकट सम्पर्क मे आया, उसने यही समझा कि महाराज श्री सब से अधिक मुझे ही मानते हैं। यह एक अनोखी विचित्रता थी।

स्वतः श्रीचरण उपदेश कम करते थे। जब कोई कुछ प्रश्न कर देता, तो उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए समीप में बैठे हुए लोगों की मानसिक शंकाओं का समाधान बिना पूछे ही कर देते थे। प्रायः लोग यह कहा करते थे कि मेरे मन में अमुक प्रश्न था मेरे मन में अमुक प्रश्न था, किन्तु महाराजश्री ने अपने उपदेश में उसी प्रश्न की चर्चा करते हुए हमारी शंका का समाधान बिना पूछे ही कर दिया। अगणित चमत्कारपूर्ण विशेषताओं से आपका व्यक्तित्व परिपूर्ण था।

महाराजश्री अपने उपदेशो मे अधिकतर स्वतः के अनुभव ही बताया करते थे। इसलिये आपके उपदेशों में सदैव नवीनता रहती थी, ज़िसके सुनने के लिये श्रोतागण सदा लालायित रहते थे और यही कारण हैं कि आपके एकान्तिक-जीवन की भी घटनाओं का वर्णन मिल गया है। इस पुस्तक में आपकी ही बताई हुई उन्हीं घटनाओं का उल्लेख है, जिन्हें भक्तों ने स्वयं उनके मुखारविंद से सुन कर नोट कर लिया था। इसलिये यह जीवनी आपके ही वचनामृत द्वारा प्राप्त घटनाओं का संकलन मात्र है। आशा हैं कि आध्यात्मिक प्रमीजन इस अमृतमय झाँकी से लाभ उठावेंगे।

रामेश्वर तिवारी

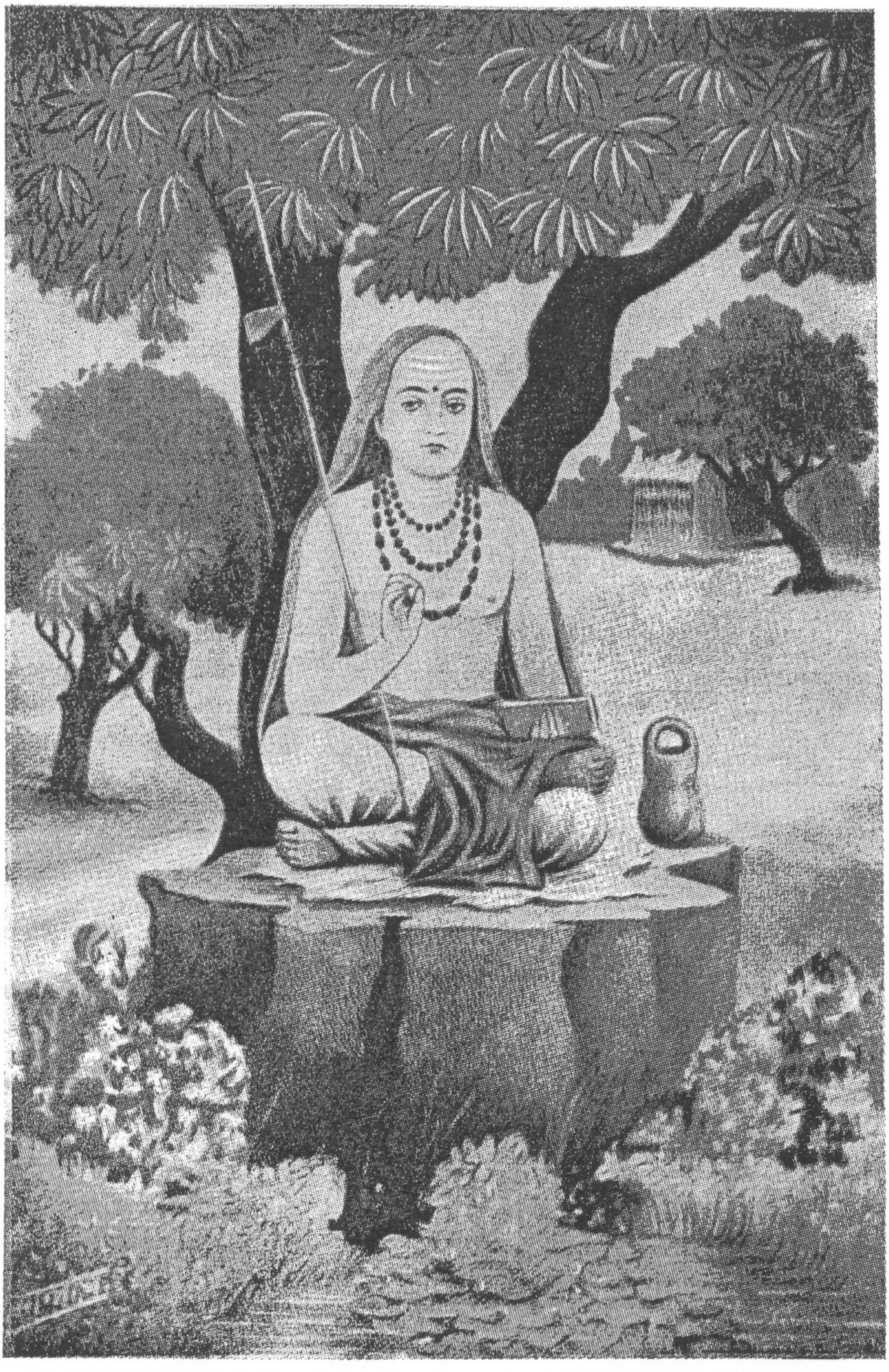

भगवत् पूज्य पाद' श्रीमदाद्यशंकराचार्य

"श्रीमद् आद्य शंङ्कराचार्य जी का संक्षिप्त परिचय'

श्रीमद् आद्य शंकराचार्य भारतवर्ष की एक दिव्य विभूति हैं। उनकी प्रभा आज भी दिग्दिगन्त को आलोकित कर रही है। उनका आविर्भाव हुए दो सहस्र वर्ष से अधिक हुआ, फिर भी उनकी कीर्ति कौमुदी उसी प्रकार अक्षुण्ण रूप में आज भी भारत के नभोमंडल को उद्भासित कर रही है। वैदिक धर्म के इतिहास में आचार्य शंकर का आविर्भाव एक नवीन युग के अवतार का सूचक है। जिस समय यह पवित्र भारतवर्ष अवैदिकता के पंक में धंसा जा रहा था, जब अनाचार और कदाचार के काले-काले राक्षस इसे चारों ओर से घेरे हुए थे, जब एक छोर से दूसरे छोर तक यह सारा देश आलस्य और अकर्मण्यता के चंगुल में फँसा हुआ था, तब आचार्य शंकर का मंगलमय उदय इस देश में हुआ। धार्मिकता की जो ज्योति दम्भ की आँधी के सामने बुझने के किनारे आकर अंतिम घड़ियाँ गिन रही थी। उस ज्योति को इन्होंने बुझने से बचाया, जिससे देश भर में धर्म की स्निग्ध आभा फैल गयी।

वैदिक धर्म का शंखनाद ऊँचे स्वर से सर्वत्र होने लगा। उपनिषदों की दिव्यवाणी देश भर में गूंजने लगी। गीता का ज्ञान अपने विशुद्ध रूप में जनता के सामने आया, लोगों को ज्ञान की गरिमा का परिचय मिला, धार्मिक आलस्य का युग बीता, धार्मिक उत्साह से देश का वायुमंडल व्याप्त हो गया, धर्म के इतिहास में नवीन युग का आरम्भ हुआ। यह युगान्तर उपस्थित करने वाले धर्म प्रतिष्ठापक श्री आचार्य शंकर किस भारतीय के वन्दनीय नहीं है ?

आचार्य शंकर ने अपने धर्मोद्धारक कार्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये भारतवर्ष के चारों सुप्रसिद्ध धामो में अपने चार प्रधान पीठों की स्थापना की थी। इन्हीं चार पीठों में से उतराम्नाय ज्योति-

ष्पीठ (ज्योतिर्मठ) लगभग १६५ वर्ष से उच्छिन्न हो गया था। स्मरण रहे कि हमारे महाराजश्री ने ही ज्योतिष्पीठ का पुनरुद्धार किया और स्वल्प समय में ही धर्मपीठ की पुनः प्रतिष्ठा कर मठ आदि निर्माण कराकर उसके सुचारु रूप से संचालन के लिये बहुत सी सम्पत्ति भी स्वनिर्मित समर्पित की।

अतः ज्योतिष्पीठ स्थापक एवं ज्योतिष्पीठोद्धारक आचार्य द्वय के पावन चरणों में श्रद्धा-भक्ति सहित हमारा नमस्कार है।

निवेदक-

जगद्गुरु, शंकराचार्य, ज्योतिष्पीठाधीश्वर,
स्वामी शान्तानन्द सरस्वती जी महाराज,
ज्योतिर्मठ, बदरिकाश्रम्।
(हिमालय)

❀ ॐ हरिः ❀

धर्म सम्राट् श्री शंकराचार्य

स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज (ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम) की

संक्षिप्त जीवनी

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

१. पहला अध्याय

बाल्यावस्था और वैराग्य

सर्वाधिष्ठान स्वप्रकाश परब्रह्म परमात्मा के साकार विग्रह कौशलेन्द्र भगवान् श्रीराम की लीलाभूमि अयोध्या के सन्निकट सरवार प्रान्त अपनी पवित्रता के लिये उत्तर भारत में प्रसिद्ध है। यह पञ्च गौड़ ब्राह्मणान्तर्गत सरयूपारीण ब्राह्मणों का प्रधान क्षेत्र है। यहाँ गाना ग्राम की विशेष प्रतिष्ठा है। महाराज श्री का इसी गाना नामक ग्राम के एक श्रेष्ठ प्रतिष्ठित सम्मानित सरयूपारीण ंक्तिपावन गाना मिश्र ब्राह्मण कुल में मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी, विक्रम सम्वत् १९२८, तदनुसार दिसम्बर २१, १८७० ई० दिन वृहस्पतिवार को प्रादुर्भाव हुआ। एक सम्पन्न ज़मीन्दार रईस परिवार के बालक होने के नाते जीवन के सभी सुख-वैभव प्राप्त थे। परन्तु कौन जानता था कि मखमली गद्दों में पला हुआ बालक संसार का परम विरक्त सिद्ध योगी होगा और शंकराचार्य की गद्दी को सुशोभित करेगा ?

महाराज श्री का प्रारम्भिक जीवन बहुत ही चमत्कारिक और आदर्शमय रहा। बाल्यावस्था से ही आपके मन में संसार की क्षण-भंगुरता भासने लगी। जन्म से ही तेजस्वी शरीर में वैराग्य का भाव प्रबल था। व्यावहारिक जीवन में आप प्रायः उदासीन ही रहते थे। एकान्तप्रिय थे। सदैव गम्भीर मुद्रा में निवास करते थे। चञ्चलता का नाम तक न था। आपका अलौकिक तेजपूर्ण मुखमण्डल सभी को प्रभावित कर लेता था। नाना प्रकार के स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ और अच्छे-अच्छे सुन्दर वस्त्रों पर, जो बालकों को स्वाभाविक ही प्रिय होते हैं, आपकी दृष्टि ही नहीं गई। जीवन के आमोद-प्रमोद की सामग्री और बच्चों के नाना प्रकार के खेल-खिलौने कभी भी आपको आकर्षित नहीं कर सके। मित भाषण और हस्त-पादादि इंद्रियों को भी यथासाध्य निरोध करना आपकी स्वाभाविक विशेषता थी। जहाँ बैठते बैठे ही रह जाते, न जाने किस विचारधारा में निमग्न रहते। आपकी प्रत्येक क्रिया में गम्भीरता और बोलचाल में अलौकिकता देख कर कुटुम्बीजन विस्मित हो जाते थे और आपकी भावी महानता का आभास पाया करते थे। आपमें बुद्धि प्रखर, विचारशक्ति प्रबल और निर्णय करने की क्षमता अद्वितीय थी।

आप अपने पितामह के बहुत प्यारे थे। उन्हीं के प्रेमपूर्ण अङ्क में आपकी दिनचर्या का अधिकांश समय व्यतीत होता था। जो कुछ आपके हृदय में प्रेमभाव या मान्यता थी, वह मानों सारी पितामह के लिये ही थी। पितामह वृद्ध थे ही लगभग सौ वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपने प्रिय पौत्र से सदा

के लिये विदा होकर अपनी लौकिक जीवन यात्रा समाप्त कर दी। सात वर्ष तक जिनकी गोद में खेले थे, उस परम प्रिय पितामह का शरीर छूट गया। घरवालों की सतर्कता के कारण बालक अपने पितामह के शव को नहीं देख सका, पर जब वे घर से बाहर निकाल कर ले जाये गये तब कुछ दूर चले जाने के बाद एक नौकर ने दिखाया कि देखो वे सब लोग पितामह को लिये जा रहे हैं। बालक ने भीड़ को बार बार कहते सुना "राम नाम सत्य है"। बालक के नेत्रों ने पितामह को ओढ़े हुये, सोये हुये, जाते हुये देखा और कानों ने सुना "राम नाम सत्य है"। सोचा, पितामह का यह अंतिम उपदेश है। बालक के मन में दो बातें जाग्रत हुईं—

(१) पितामह अब कभी नहीं मिलेंगे ;
(२) 'राम नाम सत्य है।'

अवस्था ७ वर्ष की थी। बालक अपने पितामह की स्मृति में जब भावमग्न होता तो अपने आस-पास पिता, माता, काका, ताऊ आदि सम्बन्धियों को देख कर यही सोचता कि ये भी किसी न किसी दिन इसी प्रकार छूट जाएँगे। किसको अपना समझें? एक को अपना माना था, वे चले गये, यह कोई रहनेवाला नहीं दिखता। हमारा शरीर भी इसी प्रकार एक दिन छूट जायगा। जब यहाँ कोई रहने वाला नहीं है तो फिर यह सब क्या है, कौन सी चीज है जो यहाँ रहेगी? बालक के मन में यह भाव आते ही, कानों में गूंज उठता "राम नाम सत्य है।"

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया "राम" के सम्बन्ध में अधिकाधिक विचार बढ़ता गया। यही "राम नाम सत्य" बालक के हृदय पटल पर अंकित हुआ, उसी का मनन हुआ। वही उसके भावी जीवन-प्रासाद की सुदृढ़ नींव बना। उसी "राम नाम सत्य" के साँचे में उसने अपना जीवन ढाला। बालक के मन में संसार का मिथ्यात्व दृढ़ हो गया। घरवालों ने देखा कि बालक के मन में पितामह की छाप अमिट पड़ी है। सबको चिन्ता होने लगी कि कैसे इस बालक के अन्तःकरण से पितामह की दुःखद स्मृति हटाई जाय। लगभग एक वर्ष व्यतीत हुआ। अवस्था ८ वर्ष की हुई और उपनयन संस्कार का समय आ गया। सब ने विचार किया कि उपनयन कराकर कुछ समय के लिये काशी पढ़ने को भेज दें।

आठ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् आप वेदाध्ययनार्थ काशी भेज दिये गये। काशी पहुँचते ही वहाँ की सांस्कृतिक विशेषता की छाप आप पर पड़ी। आपने अपना जीवन आध्यात्मिक उन्नति की ओर लगाने का संकल्प किया। इधर तत्कालीन प्रचलित सुकुलीन ब्राह्मण कुलों की प्रथा के अनुसार अयोध्या प्रांत के सरयूपारीण प्रतिष्ठित पंक्तिपावन गाना मिश्र कुल में पुत्र विवाहोत्सव का समय आ गया। कुटुम्बीजन प्रयत्नशील हो उठे। कुछ लोग काशी आये कि बालक को बुला ले चलें। आपको मालूम हुआ कि गृह से विवाह के लिये बुलावा आया है। अभी दूध के दांत पूरे गिरे भी नहीं थे और जिस अवस्था में सहस्रों बालक धूलि-धूसरित, अबुद्धावस्था में आपस में लड़ते-भिड़ते, हँसते-खेलते इतस्ततः

बालक्रीड़ा में निमग्न रहते हैं, उस ८-९ वर्ष की सुकोमल अवस्था में आपके कानों में 'विवाह' का शब्द पड़ा। हृदय चौंक उठा। रोमांच हो आया—-विवाह ? विवाह और उससे सम्बन्धित संसार ?

निर्मल नवीन बाल-हृदय के मानस-पलड़े पर तुल गया संसार रत्ती-रत्ती भर। उधर प्रवृत्तिमार्ग ने बालक के मानस पटल पर अपनी निराली छवि दिखलाई। अगणित सामग्रियाँ उपस्थित कीं कि समस्त इन्द्रियों के विषय को यथेच्छा भोग कर आनन्द प्राप्त किया जाय, इधर निवृत्ति मार्ग ने अपना निराला अनिर्वचनीय आकर्षण उपस्थित किया। किन्तु इसमें क्षण-भंगुरता नहीं, स्थिरता थी; कोलाहल नहीं, शान्ति थी, आवागमन नहीं, प्रत्यक्ष मोक्ष था। निस्संदेह इसका पलड़ा भारी था। आपने निश्चय किया कि निवृत्तिमार्ग ही श्रेयस्कर है और यही अपनाने योग्य है। सहसा इस पथ का द्वार खुला।

नन्हा-सा बालक त्याग वैराग्य की मूर्ति बनकर भगवती भागीरथी के पुनीत तट को पकड़े हुये चल पड़ा। आपने गंगाजी के किनारे-किनारे ही चलते रहने की ठान ली। एकाग्र-मन से अपनी अलौकिक विचारधारा सम्भाले हुये आप भागीरथी के तट पर निरन्तर बढ़ने लगे। प्रातःकाल का समय बीत गया। धूप कड़ी हो गई। ऊपर से सूर्य भगवान् की तेज किरणें, नीचे गंगाजी की तप्त बालुका। परन्तु क्या बालक इन विषमताओं से किंचित् मात्र विचलित हो सका ? उसने तो

जीवन की ऐसी विषम परिस्थितियों के साथ हँस-हँस कर खेलने का व्रत ही ले लिया था। उसे ये क्षुद्र बाधाएँ कहाँ तक रोक पातीं ?

भगवती भागीरथी का हृदय द्रवीभूत हो उठा। दो चुल्लू जल पिलाकर वृक्ष की शीतल छाया में कुछ समय रोकना चाहा; किन्तु उत्तर मिला " माँ, तेरे सहारे ही जीवन का यह वृहत् पथ व्यतीत होना है। अभी से रुकने का स्वभाव मत बनने दे। एक बार हिमालय की किसी एकाकी गुफा तक पहुँच जाने दे, जहाँ बैठकर जीवन की साध पूरी कर सकूँ।" यह कहते हुए तपसी हृदय ने जाह्नवी को प्रणाम कर आगे का पथ सम्भाला।

थकावट नहीं, नींद नहीं, निर्जन और अर्द्धरात्रि में अकेलेपन का भय भी नहीं। बढ़ते चले गये। जब भूख लगती तब चुल्लू से गंगाजल पी लेते और जब प्यास लगती तब चुल्लू से गंगाजल पी लेते। पहिला दिन गया, दूसरा बीता और तीसरा भी ढल गया, गंगा का चुल्लू चुल्लू जल पी-पी कर। वह सुकोमल अवस्था और विधि की इतनी उपेक्षा क्यों ? क्या यह परीक्षा का समय है ? परीक्षा भी हो तो भी विधना, क्या यह अति नहीं है ? किन्तु हमें सन्तोष है उस ओर से यदि अति है तो इस ओर से भी तो उसका यथार्थ प्रत्युत्तर हो रहा है। बस आगे बढ़ना ही उसका एक कार्य है। परन्तु तीसरे दिन भावी चौंक उठी; सूर्य भगवान् के विदा होते-होते परीक्षा समाप्त हुई। एक ज़मीन्दार ने गंगा के उस पार से

देखा कि कौन यह नन्हा सा बालक गोधूलि में झाड़ी-झंखाड़ बेधता, लाँघता बीहड़ पथ पर बढ़ा चला जा रहा है। उसने अपने नौकर को भेजा कि उसे बुला ले आये। किन्तु क्या यह सम्भव था? किसकी सामर्थ्य थी कि उस परम स्वतंत्र एकनिष्ठ बाल तपस्वी को अपने पास नौकर द्वारा बुलावा सके? ज़मीन्दार को स्वयं समीप जाना पड़ा।

पूछा —"आप कौन हैं?"

उत्तर —"हमें जानकर क्या करोगे? अपना अर्थ कहो।"

उसने फिर प्रार्थना की—"महाराज, मेरा अर्थ यही जानना है कि आप कौन हैं और इस असमय में इस बीहड़ पथ पर कैसे बढ़े चले जा रहे हैं?"

बाल तपस्वी ने कहा—"यह समय है या असमय, और यह कुमार्ग है या सुमार्ग, इसका ज्ञान तुम्हें नहीं हो सकता। इतना ही जान लो कि हम काशी से चलकर हिमालय में तपस्या करने जा रहे हैं। जाओ अपना काम करो, हमें व्यर्थ छेड़ने से कुछ लाभ नहीं।"

ज़मीन्दार ने कुछ साहस बटोर कर धीमें स्वर में कहा —"महाराज, क्या मैं जान सकता हूँ कि आपने मार्ग में कहाँ और कब भिक्षा की है ?"

उत्तर मिला —"अभी तक गंगोदक ही अन्न-जल का काम कर रहा है।"

"तो चलिये, ग्राम में कुछ जलपान करके आगे बढ़िये तो हमें भी संतोष होगा। रात्रि भी हो रही है।"

"भिक्षा के लिये तो हम किसी के दरवाजे जायेंगे नहीं। रही बात तुम्हारे संतोष की, तो हमें कुछ खिलाने-पिलाने से तुम्हें संतोष हो जायगा, यह भी नहीं माना जा सकता। संतोष तो तब माना जाय जब उसके बाद फिर कोई इच्छा न उठे। यह हमें भिक्षा कराने से तो होगा नहीं। यह तो तभी हो सकता है जब उस परम तत्व को जान लो जिसके जानने से सब जाना जाता है और जिसकी प्राप्ति होने पर फिर कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रह जाती। इसलिये कुछ ऐसा प्रयत्न करो जिससे वास्तव में संतोष हो जाय।"

नन्हें से दुधमुहें बालक के मुख से परमार्थ का ऐसा उपदेश ! आश्चर्य ! सोचा, जिस केन्द्र से यह ज्ञानधारा बह रही है क्या उसकी चरम स्थिति और विकास की सीमा का अनुमान लगाया जा सकता है ? मानव शरीर तो है किन्तु यह निश्चय नहीं होता कि मानवी बालवाणी है।

वहीं गंगातट पर ही दूध की व्यवस्था की गई। आपने

दो तिहाई दूध से गंगा जी का भोग लगा दिया। दुग्धधारा जल में समाहित हो गई, भगवती भागीरथी से जितना जल तीन दिन में पिया था वह एक ही बार में दूध से चुका दिया। माता का हृदय गद्‌गद्‌ हो उठा। वरदान मिला—अब जीवन में जल से जठाराग्नि शान्त करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। माता अन्नपूर्णा ने गोद में उठा लिया। फिर क्या था, वर्षों सघन वन-पर्वतों को एकाकी गुफाओं में रहे, वर्षों आकाश के नीचे मैदानी स्वामी के नाम से मैदानों में स्वच्छन्द व्यतीत किये न कभी किसी से याचना की और न किसी से संकेत किया। किन्तु खाद्य सामग्री की कभी कमी नहीं हुई। कितनी ही बार जंगलों में घनघोर अँधेरी रातों में न जाने कौन सेरों मलाई और टोकनियों में फल लाकर रख जाता।

दायें-बायें न देखकर सीधे हिमालय के लिये गंगा के किनारे-किनारे ही यात्रा चली। सन्ध्या-वंदन का नित्यकृत्य नहीं छूटा और जब जैसा प्राप्त हुआ भगवदर्पण बुद्धि-पूर्वक क्षुधा निवृत्ति की। पीने को अंजलि में गंगाजल, विश्राम के लिये वृक्षों की शीतल छाया में पवित्र भूमि-शैय्या सर्वत्र उपलब्ध हुई।

शरीर पर विशिष्ट ओज तेज होने से जिसने देखा समीप अवश्य आया। विचित्र आकर्षण था। दर्शकों की आँखों में ध्रुव, प्रह्लाद की छवि साकार होकर झूल पड़ती थी। इस प्रकार दिन बीत रहे थे, रातें बीत रही थीं जब तक पैरों ने मन का साथ दिया तब तक चले और जब पैर थके तो किनारे गंगा की बालू में किसी वृक्ष की छाया में विश्राम किया और

नींद खुलते ही आगे चल पड़े तीन दिन के बाद मालूम पड़ा कि गंगा बहुत चौड़ी हो गई हैं बालक को यह ज्ञान न था कि यह गंगा यमुना का संगम है। कुछ और आगे बढ़े तो लोगों से मालूम हुआ कि प्रयाग आ गये।

त्रिवेणी का माहात्म्य तो पितामह से सुना ही था। श्रद्धापूर्वक गोते लगाये। आगे आकर थकान मालूम हुई तो दशाश्वमेधघाट पर किनारे एक चौकी पर बैठ गये। कुछ समय व्यतीत हुआ—ध्यान में बैठे थे कि एक महाशय बगल में आकर बैठ गये और बाल तपस्वी की मुद्रा को चुपचाप देखने लगे। काफी समय व्यतीत हो गया। देखा कि यह बालक तो है परन्तु बालकपन की चेष्टाओं से सर्वथा रहित है। चेहरा थका हुआ सा है पर तेजयुक्त है। उसने अपनी जेब से एक कागज निकाला, पढ़ा और ध्यान पूर्वक एक बार पुनः बालक की मुखाकृति को देखा। तब बिलकुल पास ही सामने जाकर उसी चौकी पर बैठ गया। बाल तपस्वी अपनी अंतर्निष्ठा से चौंक पड़ा और समीपस्थ पुरुष की ओर निहारा। अपनी ओर देखते जानकर उस पुरुष ने आपके सामने अपनी जेब का कागज निकालकर रख दिया।

बाल तपस्वी —"यह क्या है ?"
उत्तर —"आपकी हुलिया।"
बाल तपस्वी —"आप कौन हैं ?"
उत्तर —"मैं पुलिस का दारोगा हूँ।"
बाल तपस्वी —"क्या चाहते हैं ?"

दारोगा —"आपके नाम की यह हुलिया है। आप घर से भाग आये हैं।"

बाल तपस्वी —"अधिक बात को क्या आवश्यकता है, हुलिया ही है न ?"

दारोगा —"हाँ"

बाल तपस्वी —"तो जिसने हुलिया कटाई है, उसे सूचना दे दो कि हम यहाँ हैं। किसी का पशु खो जाता है तो वह उसकी हुलिया कटा देता है। हम तो किसी के लड़के ही हैं। सूचना दे दो कि हम यहाँ पर आ गये हैं। वह चाहेगा तो आकर ले जायगा।"

दारोगा —"हाँ, सूचना तो मैं कर ही दूँगा ? पर आप घर से क्यों चले आये कुछ मालूम भी तो हो।"

बाल तपस्वी —"यह तो अच्छा प्रश्न है, घर से क्यों चले आये ? हम पूछते हैं कि आप घर ही में क्यों रहते हैं ?"

दारोगा अपनी पुलिसगीरी भूल गया—छोटे से बच्चे के मुँह से दर्शनशास्त्र का इतना ऊंचा तर्क सुनकर उसकी बुद्धि चकरा गई उसका दारोगापन जाता रहा। आवाज में नरमी आ गई उसने कहा —"घर में तो सभी रहवे हैं, क्योंकि

घर में आराम रहता है। घर के आराम को छोड़कर आप इस तरह दरिया के किनारे दोपहर में मारे-मारे फिर रहे हैं इसका क्या कारण है ?"

बाल तपस्वो —"जाइये दारोगा जी, अपना काम कीजिये और घर का आनन्द लीजिये। गंगातट पर माता की गोद में, रेती में, एकान्त दोपहरी में और निर्जन, नीरव स्थली में हम मारे-मारे फिरते हैं या आनन्द करते हैं यह आपकी समझ में नहीं आ सकता।"

नन्हें से बालक के मुख से ऐसे मार्मिक शब्द सुनकर दारोगा जी की आँखें खुल गईं। पुलिसपन का नशा उतर गया और श्रद्धापूर्वक बोले—"आपकी छोटी उमर है। किसी बड़े घर का जन्म मालूम पड़ता है। क्या इस प्रकार अनाथ से फिरने में आपको संकोच नहीं होता ?"

बाल तपस्वी —"हम छोटे हैं, आप तो अपने को बड़ा ही मानते हैं न ? बड़े होकर भी आप यह नहीं समझते हैं कि अनाथ और सनाथ कौन है ? थोड़ा विचार तो कीजिये तो स्वयं ही पता

लग जायगा कि सर्वत्र सर्वशक्ति-
मान् परमात्मा ही सब का एक
"नाथ" है। उसकी शरण में जिसने
अपने को डाल दिया वह अनाथ
रहा कि सनाथ हो गया। हम
आपसे पूछते हैं कि जिसने उस परम
पिता से अपना सम्बन्ध नहीं बनाया
क्या उसे आप "सनाथ" कहेंगे ?"

एक बालक के मुख से परमार्थ का सारगर्भित उत्तर सुनकर दारोगा जी निरुत्तर हो गये और उनके मन में आया कि यह कोई साधारण बालक नहीं, कोई होनहार महान् आत्मा है।

दारोगा जी विनम्रतापूर्वक बोले,—"आप एक काम करें कि
अब हमारे साथ चलें, क्योंकि आपके
नाम की हुलिया है। वैसे तो आप-
को हम यहाँ छोड़ कर जा नहीं
सकते। पर हम आपको पुलिस
थाने में नहीं ले चलेंगे। आप हमारे
साथ हमारे घर पर चलें। वहाँ
रात्रि में रहें फिर सबेरे जो विचार
होगा वह कीजिएगा।"

बाल तपस्वी को समझा बुझा कर दारोगा उन्हें अपने घर पर ले गया। रात्रि में अनेक प्रकार की सतसंग-वार्ता में उसने

यह भलीभाँति समझ लिया कि बालक तीव्र वैराग्यवान् है और वास्तव में हिमालय पहुँचकर भगवान् की प्रत्यक्षानुभूति के लिये तपश्चर्या में ही अपना जीवन लगाना चाहता है। दारोगा ने यही निश्चय किया कि उन्हें जल्दी ही हिमालय के निकट भेज दिया जाय। प्रातःकाल दारोगा ने कहा हम आपके इस पवित्र मार्ग में बाधक नहीं होना चाहते। परन्तु आपकी हुलिया देश भर के लिये है। यदि इसी प्रकार गंगा के किनारे-किनारे पैदल चला करेंगे तो कहीं न कहीं अवश्य ही पकड़ जायेंगे इसलिये हम सोचते हैं कि आपको चुपचाप रेल पर बैठा कर हरिद्वार तक भेज दें।

जो बाल तपस्वी चाहते थे वही हुआ। इनके मन में था कि जल्दी से जल्दी हरिद्वार पहुँच जाय। उसकी भूमिका स्वतः बन गई। जो बाधक बनकर आयाथा वही साधक बन गया। भगवान् के भक्तों की बातें ऐसी ही हुआ करती हैं। भगवान् की शक्ति से ही भक्तों के संकल्प पूरे होते हैं। सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ भगवान् की सर्वशक्तिमयी प्रकृति का यह कार्य है कि प्रिय भक्त की इच्छा के अनूकूल परिस्थितियाँ बना दे और भक्त के संकल्प की पूर्ति कर दे। दारोगा ने उन्हें टिकट लेकर गाड़ी पर बैठा दिया। बाल तपस्वी दूसरे दिन हरिद्वार पहुंच गये।

जब आप गंगा-स्नान को जा रहे थे, एक पुलिस इन्सपेक्टर से भेंट हुई। इन्सपेक्टर ने देखा कि यह तो वही बालक है जिसकी ढूँढ़ हो रही है। क्यों न इसे उनके घर भेजवा दिया जाय और पारितोषिक लिया जाय? इतना सोचते सोचतेवह बालक के साथ हो गया। इन्सपेक्टर ने पूछा-"बच्चा, तुम घर से क्यों

चले आये और कहा जा रहे हो ?"। उनका उत्तर था "परम पिता का साक्षात्कार करने के लिये सीधे हिमालय की ओर यात्रा हो रही है।" पुलिस इन्सपेक्टर ने कहा "मैं आपको आपके घर भेजना चाहता हूँ, क्योंकि इससे हमें पारितोषिक मिलेगा। उत्तर दिया "मैंने निश्चय कर लिया है और उसी पर अटल हूं। यदि आप मुझे भेज भी देंगे तो मैं वहाँ रह नहीं सकता, दूसरे ही दिन मेरी फिर यहीं के लिये यात्रा होगी। इसलिये आप मेरे लिये विघ्न न बनें और मुझे जाने दें। किन्तु यदि पारितोषिक का लोभ विशेष है तो मुझे हमारे घर भेजवा कर अपना पारितोषिक ले लें। जैसा उचित समझें वैसा करें।" पुलिस इन्सपेक्टर धार्मिक प्रकृति का साधुसेवी सज्जन था उसने बालक की बातें मान ली और चला गया। परन्तु दूसरे ही दिन जब आप ऋषीकेश की ओर यात्रा कर रहे थे दूसरे पुलिस इन्सपेक्टर मिल गये। उन्होंने भी देखा कि यह बालक तो वही बालक है जिसकी हुलिया कटी है और पारितोषिक निकला है। उसने नहीं माना और बाल तपस्वी को घर भेज दिया।

दूसरा अध्याय

गृहत्याग और सद्गुरु की खोज

घर पहुंचने पर सभी बड़े-बूढ़ों से ज्ञान-वैराग्य की ही चर्चा करते रहे। एक ६ वर्ष के अबोध बालक की ज्ञान वैराग्य की बातों को कुट्टुम्बीजनों ने बाल्यावस्था की सनक समझ कर टाल दिया। जितना ही बालक ने उन लोगों से प्रार्थना की कि उन्हें घर गृहस्थी के जंजाल में न बाँधा जाय उतनी ही तेजी से लोगों ने विवाह का कार्य प्रारम्भ किया। उन्हें भय था कि बहका हुआ बालक कहीं हाथ से निकल न जाय। परन्तु बालक के दृढ़ विश्वास और अटल निष्ठा ने साथ दिया। वह अपने पूर्व संकल्प पर दृढ़ रहा और अपने घर और पारिवारिक जीवन के बंधन में बँधना कदापि स्वीकर नहीं किया। बड़े बूढ़ों को आपके भविष्य की चिन्ता थी। यद्यपि वे जानते थे कि बालक एक श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करने जा जा रहा है, जिससे केवल अपना ही नहीं वरन् कुल परिवार और संसार का कल्याण है। परन्तु फिर भी आजीवन ब्रह्मचर्य के कठिन तप और वैराग्य के कंटीले जीवन की कल्पना से वे भयभीत हो उठते थे। उन्होंने बहुत कुछ समझा बुझा कर विचार बदलने का प्रयत्न किया। परन्तु वह बालक महात्मा अपने निश्चय पर ही अटल रहा। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि भगवान् के दर्शन और तत्वज्ञान के बिना कुछ भी कर सकना असम्भव है। घर के सभी लोग अपने प्रयत्न में असफल रहे।

फिर गाँव के सर्वमान्य कुलगुरुजी को बुलाया गया। पंडित जी ने अपने अनुभव और पाण्डित्य के बल पर बहुत कुछ समझाने की चेष्टा की। उन्हें विश्वास था कि बालक का मन बदल देना बड़ा सरल है। परन्तु जितनी ही बुद्धिमानी से वे अपनी दलीलों को उपस्थित करते गये, उतनी ही बुद्धिमानी के साथ उन्हें उनका उत्तर मिलता गया। जब पाण्डित्य के तर्क वितर्क में पंडितजी जीत न सके, तो उन्होंने भावुकता की शरण ली। बोले, "बेटा, तुम एक मात्र अपने माता-पिता की संतान हो। उनकी सारी कल्पनाएँ तुम्हारे जीवन के सहारे बनी हैं। उनकी आशाओं के भंडार हो तुम। माता पिता की इस वृद्धावस्था में सेवा करना ही परम धर्म, और कर्तव्य है। उन्हें छोड़ कर अनाथ मत करो। उनका सारा बचा हुआ जीवन अंधकारमय और दुःखपूर्ण हो जाएगा। अभी तुम्हारा बाल्यकाल है। यह जंगलों में तप करने की अवस्था नहीं है। यदि यह निश्चय ही है कि संन्यास लेकर वैराग्य का अभ्यास करना है तो अभी उसका अवसर नहीं आया। पहिले पारिवारिक उत्तरदायित्व को पूर्ण करो, विवाह करके घर गृहस्थी के अनुभव प्राप्त करो; फिर संन्यास का समय आने पर जंगलों में चले जाना। अपूर्ण जीवन से तो साधन न हो सकेगा।"

परन्तु जिस व्यक्ति को भविष्य में धर्म-सम्राट् की गद्दी सुशोभित करनी है, उस पर क्या इन लचर दलीलों का प्रभाव पड़ सकता था? बड़ी दृढ़ता के साथ उत्तर दिया "भगवन्, आप की आयु ८० वर्ष की हो गई, परन्तु कितने दुःख की बात है कि आपको अब तक तत्वज्ञान प्राप्त करने की इच्छा ही नहीं हुई। लज्जा की बात है कि आप सांसारिकता में इस तरह

जकड़े हुए हैं कि अपने कल्याण का मार्ग आपको नहीं सूझता। यदि बालक होने के नाते मुझे घर पर रहना चाहिये तो वृद्ध होने के कारण आपको जंगल के लिये प्रस्थान करना चाहिये। मैं उचित निश्चय पर पहुंच चुका हूँ। मैं अपना कर्तव्य सही ढंग से निभाने जा रहा हूँ और सभी को सही मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिये। आपने आगे कहा कि शास्त्रों का कहना हैं कि यदि परिवार में एक भी मनुष्य को तत्वज्ञान प्राप्त हो जाय तो वह परिवार का परिवार तर जाता है। यदि शास्त्रों का कथन सत्य है तो भगवत्-साक्षात्कार और ब्रह्मज्ञान से मैं सारे परिवार का कल्याण करनेवाला बनूंगा।"

इस पाण्डित्यपूर्ण उत्तर को पाकर वयोवृद्ध पुरोहित महाराज अवाक् रह गये। उन्हें धीरे-धीरे अनुभव होने लगा कि जिसे वह एक अबोध और नासमझ बालक समझ कर सही मार्ग पर लाने की चेष्टा कर रहे थे, वह भविष्य का एक परम तपस्वी और सिद्ध महात्मा है। पंडित जी ने परिवार वालों को संबोधित करते हुए कहा, "यह आपके कुल में ध्रुव उत्पन्न हुए हैं और आपके कुल को उज्वल बनायेंगे" इतना कह कर उठ खड़े हुए और बड़ी श्रद्धा-भावना से उस बाल महात्मा को शीश नवा कर प्रणाम किया और फिर परिवार के सभी छोटे-बड़े सज्जनों ने बारी-बारी से उन्हें प्रणाम किया।

परन्तु परीक्षा का अंत अभी नहीं हुआ। कुछ लोगों ने फिर भी प्रयत्न किया कि माता के वात्सल्य-प्रेम के प्रभाव से बालक के निश्चय को बदला जाय। उनकी सारी बातें

उनकी माता जी पर्दे के भीतर बैठी हुई सुन रही थीं। कुछ माताएँ उनकी माता जी के पास गईं और अपना आशय उनसे प्रकट किया। उस समय बालक के हृदय में यह चिन्ता हुई और संकट उत्पन्न हुआ कि कहीं माता की ओर से न रोक लिया जाऊँ। परन्तु जैसा विशाल हृदय-वाला पुत्र था, माता भी वैसी ही विशाल हृदयवाली थीं। वह पुत्र की इस प्रकार की ज्ञान-विकसित भावना को कैसे ठुकरा सकती थीं? वे यह नहीं सहन कर सकीं कि अपने पुत्र के श्रेष्ठतम उन्नतिशील पवित्र और उज्वल भविष्य के सामने रुकावट बन कर खड़ी हों। उन्होंने उत्तर दिया, "जो इतने ऊँचे मार्ग का अनुसरण करने जा रहे हैं और जिन्हें हमारे कुलगुरु भी प्रणाम कर रहे हैं, उन्हें हम गज से उतार कर गधे पर बिठाना उचित नहीं समझतीं। कल्याण मार्ग से हटाकर गृहस्थी के जंजाल में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दे सकती" उस पर आपने माता जी से प्रस्थान करने की आज्ञा माँगी। उत्तर मिला "जाओ भजन करो। किन्तु भिखमंगा साधु नहीं बनना और जब कभी भी गृहस्थी करने की इच्छा हो तुरन्त घर चले आना।"

दो दिन बाद उन्होंने घर छोड़ दिया। छोड़ दी उसके साथ संसार की माया और ममता। विशाल जन समूह के कोलाहल के बीच से अनन्त ब्रह्मांड के किसी निर्जन कोने में रमने के लिये चल दिया एक अबोध दृढ़-प्रतिज्ञ बालक। कौन जानता था उस समय कि यही बालक एक दिन पथ-विहीन, लक्ष्यहीन आध्यात्मिकता के प्रतिकूल विकराल प्रवाह के सामने एक ठोस चट्टान बनकर खड़ा होगा?

आप प्रयाग पहुँचे। यहाँ संगम में स्नान करके बालू पर एकान्त निर्जन स्थान में ध्यानस्थ होकर बैठ गए। दिनचर्या विलक्षण और आकर्षक थी। इसी स्थान में तीन दिन बीत गए। एक पुलिस के दारोगा जी जो तीन दिन से इस अलौकिक तेजपूर्ण बालक की क्रियाशीलता देख रहे थे कुछ विस्मित होकर निकट आये और साधारण सा प्रश्न किया—

"महाराज, किधर से आना हुआ है और किधर जाना है ?"

उत्तर असाधारण था—

"मैं वहीं से आया हूँ, जहाँ से सारा जगत् आया है और वहीं जा रहा हूँ जहाँ सारा जगत् जा रहा है।"

दारोगाजी ने फिर प्रश्न किया—

"परन्तु बिना पैसे के जीवन-निर्वाह तो नहीं हो सकता है?"

अधिक दृढ़ता से उत्तर मिला—

"अनेक जन्मों से मैं शुभ कर्म करता आ रहा हूँ, उनका फल ही मेरा धन है। मेरा शरीर तब तक चलेगा जब तक यह पुण्यरूपी धन है और जिस दिन इसका अन्त हो जायगा, उसी दिन नश्वर शरीर भी शान्त हो जायगा। आप मेरी चिन्ता न करें और जाकर अपने कार्य में लगें।"

इस नन्हें से बालक की दृढ़ता, विश्वास और तेजपूर्ण

मुख-मण्डल के दर्शन से दारोगा जी पहिले ही प्रभावित हो चुके थे। प्रारब्ध, पुरुषार्थ और इच्छा-शक्ति का इतना सुन्दर विवेचन सुन कर नत-मस्तक हो गये और बड़ी श्रद्धा से उस बालक महात्मा को प्रणाम किया ओर चले गये।

अपने प्रारब्ध और विश्वास के सहारे आप फिर हरिद्वार पहुँचे। यह स्थान धार्मिक जनता का केन्द्र तो है ही। शीघ्र ही लोग इस दिव्य स्वरूप की ओर आकर्षित हो गए। परन्तु बालक महात्मा को अपने ध्यान पूजन के अतिरिक्त किसी ओर देखने का भी अवकाश न था। एकान्त में भजन होता रहा और इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गये।

घूमते-घूमते आप ऋषीकेश पहुँचे। यह पुण्यस्थल है और प्राचीन समय से ही एक महान् तीर्थ रहा है। उत्तरी भारत और विशाल हिमालय के क्षेत्र में बसा हुआ यह छोटा सा नगर हिमालय का द्वार है। बड़ा ही रमणीक स्थान है, साधु, महात्मा, मुमुक्षुओं और साधकों को तो विशेष प्रिय है। चारों ओर सुन्दर जंगल है, जहाँ एकान्त में युग-युग से कितने ही साधक अपने अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर लोककल्याण में सहायक हुए हैं। यहाँ आपका विचार हुआ कि स्वतन्त्र रूप से जप-तप अभ्यास मर्यादा के विरुद्ध होगा। भगवान् आदि शंकराचार्य ने भी गुरु की शरण ली थी। इसलिए मर्यादा का उल्लङ्घन उचित नहीं और किन्हीं सद्गुरु की खोज करनी चाहिए। सद्गुरु कैसा होना चाहिये—

"श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्"—इन दो शब्दों में अपने दो शब्द और जोड़े—"क्रोधरहित और बाल ब्रह्मचारी।"

बहुतों की प्रतिष्ठा सुनी। जा जा कर साक्षात्कार किया। कहीं कोरा पाडित्य था, कहीं शुष्क त्याग वैराग्य, कहीं श्रोत्रियता और ब्रह्मनिष्ठता दोनों प्रतीत हुई, तो बाल ब्रह्मचारी न होने के कारण गुरु जी आपकी कसौटी पर खरे न उतर पाये। एक दण्डी स्वामी महात्मा बाल ब्रह्मचारी सुने गये। उनके योगाभ्यास की भी ख्याति सुनी। उनके समीप गये। वहाँ आश्रम के सेवकों से विदित हुआ कि स्वामी जी अभी समाधि में हैं। अतः प्रतीक्षा में बाहर बैठ गए। स्वामी जी समाधि से उठकर सीधे बाहर आये। आँखों में कुछ गुलाबीपन था। प्रतीत होता था कि प्राणायाम की गरमी अभी शान्त नहीं हुई है। बड़ी नम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड़ कर कहा "ॐ नमो नारायणाय। स्वामिन् कुछ अग्नि की आवश्यकता है, मिल जाय तो बड़ी कृपा होगी" यह सुनना था कि स्वामी जी की अग्नि भड़क उठी। आँखें लाल हो गईं। क्रोधपूर्वक बोले······(कुछ अप शब्द) "जानता नहीं, दण्डी के पास अग्नि कहाँ ? मुझसे अग्नि माँगने आया है·········" स्वामी जी के आवेश के कारण कुछ दो एक कदम पीछे हट कर बोले—"स्वामिन्, अग्नि रही नहीं, तो आई कहाँ से ?"

बस, सहसा हवा बदल गई। क्रोध जाता रहा। एक नन्हें से बालक से इस तरह परास्त होकर स्वामी जी के हृदय में ठंडापन उतर आया। वे रुक न सके, दौड़ कर गले लगा लिया। बोले, "बेटा, हम अवश्य अपने स्थान से च्युत हो गये। यह तो अन्तःकरण का धर्म है। निमित्त पाकर गड़बड़ हो ही जाता है। अपने वास्तविक रूप में आत्मा तो सदा निर्लेप है।

तुम धन्य हो जो इस अवस्था में अग्नि प्रज्वलित करने की उत्कट इच्छा रखते हो। आपने कहा "स्वामी जी, आपकी अग्नि की पहली लपट ने ही मुझे भयभीत कर दिया है।"

"धन्य हो, बेटा, धन्य हो," यह कहते हुये बालक की अपूर्व बुद्धि की प्रशंसा करते हुए बड़े प्रेम से दो तीन दिन अपने आश्रम में रखा, कुछ उपदेश दिये। इच्छा थी कि ये समीप में रह जायँ तो इन्हें योगाभ्यास कराया जाय। किन्तु, छूटा हुआ तीर फिर हाथ नहीं आता। पहिले ही स्वामी जी के क्रोधी होने का प्रमाण मिल चुका था। खेद रहा कि स्वामी जी भी आपकी सद्गुरु कसौटी में उन्नीस ही उतरे।

आगे बढ़े। सद्गुरु की खोज थी। कितने ही घाट का पानी पीना पड़ा, कितनी ही कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। किन्तु खोज जारी रही श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी की। कई प्रतिष्ठित महात्माओं के समीप रहे, परन्तु कोई कसौटी पर ठीक न उतरा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हिमालय स्थित उत्तरकाशी पहुँचे। उत्तरकाशी के शृंगेरीपीठ के शिष्य परम तपस्वी बाल ब्रह्मचारी योगिराज दण्डी संन्यासी श्री स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती जी महाराज की शरण में गये और अखण्ड ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर उन्हीं के समीप रहने लगे। गुरुदेव ने आप का नाम "ब्रह्म चैतन्य ब्रह्मचारी" रखा।

स्वामी जी भारतीय दर्शनशास्त्र के आचार्य और पूर्ण सिद्ध योगिराज थे। जीवन के उच्चतम सिद्धान्तों को वास्तविक जीवन में घटाने की उनकी कोई समता नहीं कर सकता था। तत्वज्ञान की पराकाष्ठा को पहुँचे हुए स्वयं ब्रह्मस्वरूप

साक्षात् शंकर स्वरूप भगवान् थे। स्वामी जी के आश्रम में अनेक नवयुवक साधक जीवन के सभी सुख ममता और मोह को त्याग कर परमात्म-दर्शन की उत्कट अभिलाषा से रहा करते थे। सानिध्य होते ही आपने समझ लिया कि जिस गुरु की खोज थी, वह मिल गये और गुरुदेव ने भी जान लिया कि एक उपयुक्त अधिकारी शिष्य तत्वज्ञान की प्राप्ति हेतु उनकी शरण में आया है। ऐसे साधन सम्पन्न अधिकारी को पाकर आप्तकाम, परम निष्काम, सदा एकान्त सेवी अद्वैत निष्ठ महात्मा शास्त्र का कपाट खोल कर कुञ्जियाँ प्रदान करते हैं और दर्शा देते हैं कि तत्व यह है।

गुरु जी विशेष प्रसन्न हैं। उन्हें अपने आश्रम के छोटे ब्रह्मचारी पर स्नेह है, प्रेम है। अल्पवयस्क ब्रह्मचारी एवं जन्मजात तपस्वी पर गुरु की असीम अनुकम्पा की बाढ़ सी आ गई है, कुछ विशेष आकर्षण हो गया है। गुरु जी के इतने लगाव का कारण—यह अनुभव का विषय है। शिष्य और गुरु के दो हृदयों के बीच सूक्ष्मातिसूक्ष्म भी कोई ऐसा स्तर नहीं है जो भेद का कारण हो। शिष्य अपने अहंभाव को समस्त वासनाओं सहित भस्म कर अपने अन्तःकरण में सद्गुरु का स्थान बना लेता है। मन को वह अपने सद्गुरु के चरणों में अर्पित कर चुकता है और सद्गुरु के अन्तःकरण की भावनाओं से प्रभावित होकर उसके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की सूक्ष्म स्थूल हलचलें होती हैं। उसके भाव उसके अपने भाव नहीं, वे तो गुरु की भावनाओं के आभास हैं। उसके विचार उसके अपने विचार

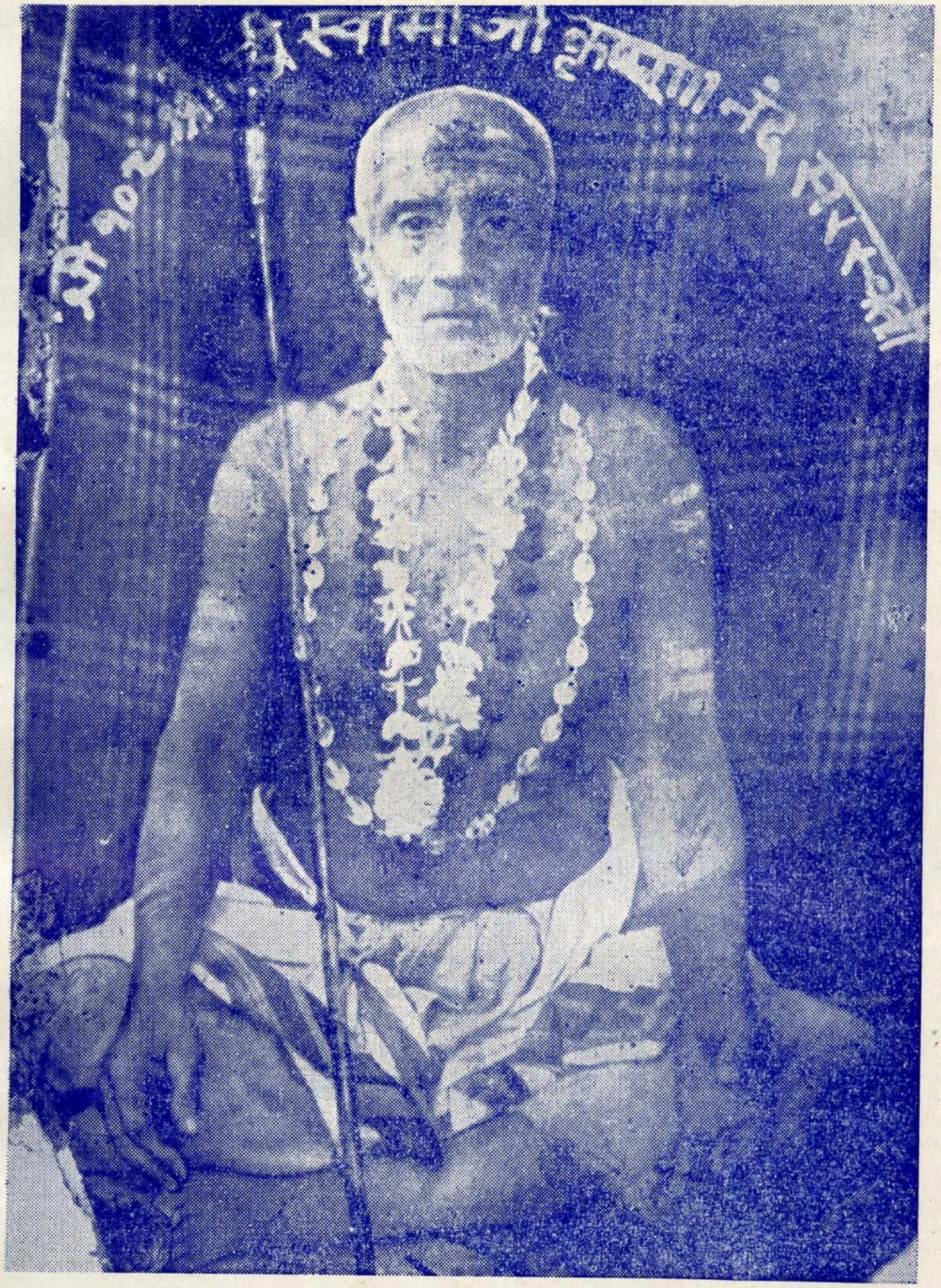

श्री ज्योतिष्पीठोद्धारक के पूज्य गुरुदेव
श्री १००८ स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती जी महाराज
वाराणसी

नहीं वरन् सद्गुरु की विचारधारा के प्रतीक हैं। उसका व्यक्तित्व उसका अपना व्यक्तित्व नहीं वह तो गुरु की धरोहर है। शिष्य के आत्म-समर्पण की इस ऊँची सीढ़ी पर गुरु का सर्वस्व शिष्य का है और शिष्य उस सर्वस्व के सहित अपने को सद्गुरु के चरणों में समर्पित आनन्द लेता है। आश्रम के छोटे ब्रह्मचारी की आत्म-समर्पण की भावना इसी प्रकार परमोत्कृष्ट है।

तीसरा अध्याय

गुरुनिष्ठा

एक बार उत्तरकाशी में कोई विशिष्ट दार्शनिक व्याख्यानदाता आये। वह भारतीय दर्शन शास्त्र पर व्याख्यान दिया करते थे। सभी साधु-महात्मा आमंत्रित थे। गुरु जी तो कभी कहीं जाते नहीं थे। आश्रम के सभी विद्यार्थी साधकों की इच्छा हुई उनका व्याख्यान सुनने की और गुरुदेव से आज्ञा माँगी। आज्ञा हुई कि सब लोग चले जाना, जाते समय प्रमुख द्वार पर बाहर से ताला बन्द करते जाना और जब आना तो खोल कर चले आना। समय हुआ और सभी आश्रमवासी व्याख्यान सुनने चल दिये, ताला बाहर से बन्द कर दिया गया। इधर छोटे ब्रह्मचारी का हृदय धड़कने लगा। विचार हुआ कि सभी दर्शनशास्त्रों के पंडितों के भी आचार्य परम श्रेष्ठ तपस्वी तत्वज्ञान-प्राप्त श्री गुरुदेव जिनकी कृपा के बल पर अभ्युदय और भगवत्साक्षात्कार करना है, जिनके श्री चरणों में जीवन समर्पित है, उनके श्री चरणों को छोड़कर कहाँ जाना है ? जिनके एक शब्द से ही कल्याण हो सकता है जिनकी कृपा-कटाक्ष से हृदयपटल की पंखुरियाँ विकसित होकर तत्वज्ञान का प्रकाश करा सकती हैं, उनको छोड़कर अनभिज्ञ, केवल पुस्तकों के ज्ञाता और साधनहीन व्याख्यानदाता के व्याख्यान में क्या सार मिलेगा ? उसमें ऐसी क्या वस्तु मिल जायगी जो अपने इष्ट के इस घोर अपमान का

बदला चुका सकेगी ? उन्हें इस प्रकार ताले में बन्द कर सब लोगों का जाना कितना लज्जास्पद है। पग-पग पर इस प्रकार की भावना पुष्ट होती गई और थोड़ी ही दूर जाने पर यह निश्चय किया कि सब जाते हैं तो जाने दो, अपना लौट पड़ना ही ठीक है।

किन्तु लौटने के लिये कोई प्रत्यक्ष कारण साथियों को बताना आवश्यक था। यह तो कह नहीं सकते थे कि गुरु जी को ताले में बन्द करके जाना ठीक नहीं, क्योंकि सब कहने लगते कि तुम्हीं एक बड़े भक्त हो गुरु जी के। इतने पुराने-पुराने सब सेवक लोग चल रहे हैं क्या वह गुरु जी का अपमान कर के आये हैं। इसलिए कहा, "व्याख्यान में उत्तर-काशी के विद्वान महात्मा आयेंगे, इसलिये व्याख्याता का भी भाषण क्लिष्ट होगा। हमारी समझ में तो आयेगा नहीं, इस-लिये हमारा जाना व्यर्थ ही होगा। हम लौट जाते हैं," तत् पश्चात् फाटक की कुञ्जी लेकर लौट आये।

पीछे कदम रखा ही था कि दो दण्डी संन्यासी महात्मा आश्रम की ओर जाते हुए दिखाई पड़े। जल्दी बढ़कर ताला खोला। उन्हें अपनी कुटिया में आसन देकर पूछा "महाराज भिक्षा हुई है कि नहीं ?" उन्होंने कहा "इसी उद्देश्य से आये हैं कि यहाँ कुछ भिक्षा करके व्याख्यान सुनने जायँगे"। विचार किया कि व्याख्यान का समय तो प्रायः हो ही गया है। जल्दी से हलुवा बना कर उन्हें जलपान कराया। तब वे व्याख्यान सुनने चले गये।

इधर आप नित्य-कृत्य में संलग्न रहे। सायंकाल सब लोग व्याख्यान सुनकर लौटे । वे दोनों दण्डी संन्यासी भी आये। गुरु जी ने दण्डी महात्माओं को देखकर पूछा "आप लोगों की भिक्षा हुई है ?" उन्होंने कहा "हाँ महाराज, यहीं आश्रम में व्याख्यान सुनने जाते समय भिक्षा करके गये थे" गुरु जी ने सोचा कि आज तो आश्रम बन्द ही रहा । उन्होंने इधर कहाँ भिक्षा की ? पूछा, "आश्रम में कहाँ ?" संन्यासियों ने बताया "अन्तिम कुटिया में एक छोटे ब्रह्मचारी थे, इन्होंने जल्दी से हलुवा बना कर हम लोगों को भिक्षा करा दी थी जिससे व्याख्यान में भी समय पर पहुँच गये थे।" नित्य की भाँति जब छोटे ब्रह्मचारी प्रणाम करने गये तब गुरु जी ने पूछा "क्या तुम व्याख्यान सुनने नहीं गये थे ?"

"नहीं, महाराज ! हमने सोचा कि हमारी समझ में तो आयेगा नहीं, जाना व्यर्थ ही होगा । इसलिये नहीं गये।" दण्डी संन्यासियों के अतिथि सत्कार की बात पूछी । जैसा किया था बता दिया। गुरु जी ने सोचा इस अवस्था में तो सभा समा-रोह बच्चों को स्वाभाविक ही आकृष्ट करते हैं, इनके न जाने का कोई विशेष ही कारण होगा । कुछ सूक्ष्म विचार किया। योगी थे ही, परिस्थिति स्पष्ट चित्रित हो गई। विदित हो गया कि इनकी गुरुनिष्ठा आश्रम के सभी सेवकों से उत्कृष्ट है। फिर क्या था उत्कृष्ट अधिकारी के लिये उत्कृष्ट पथ निर्धारित हो गया। दूसरे दिन रात्रि के समय जब प्रणाम करने गये तब गुरु जी ने रोक लिया। सब प्रणाम करके चले गये तब कहा—"जितना शास्त्र-अध्ययन हो गया, पर्याप्त है।

अब हम तुम्हें साधन में लगाना चाहते हैं जिससे जो बात शास्त्र से जानी गई है उसका अनुभव कर लो।" "जो आज्ञा महाराज।" "जो साधन तुम्हारे लिये निश्चय किया गया है, वह हमारे साथ इस आश्रम में रहकर नहीं हो सकेगा, क्योंकि तुम्हारा वह मार्ग होगा......... जो बहुत उत्कृष्ट साधन है। इस आश्रम में कई लोग बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस वर्ष से पड़े हैं। साधन-सम्पत्ति न होने के कारण कोई उस अध्यात्म विद्या के अधिकारी नहीं हैं इसलिये यह मार्ग किसी को नहीं बताया गया। यदि यहीं रह कर तुम उसमें दत्त-चित्त होगे, तो ये लोग ईर्ष्यावश तुम्हारे मार्ग में बाधक हो जायँगे। यहाँ से समीप ही, तीन मील की दूरी पर एक स्थान है, वहीं जाकर...........इस प्रकार से अभ्यास करो। सात दिन में एक बार सन्ध्या समय चले आया करो और एक रात्रि यहाँ बिताकर प्रातःकाल चले जाया करो। कल हम तुमको वहाँ जाने की आज्ञा देंगे, पर अभ्यास करने के लिये वहाँ जाओ ऐसा नहीं कहेंगे। सब लोगों के सामने तुमको जोर से डाँटेंगे और आश्रम से हट कर वहाँ जाकर रहने के लिये कह देंगे तुम घबड़ाना नहीं। चुपचाप अपना सामान लेकर वहाँ चले जाना जिससे लोग समझें कि इन्होंने कोई बड़ी भूल की है जिससे गुरु जी ने अप्रसन्न होकर आश्रम से हटा दिया है।"

गुरु जी दूसरे दिन किसी निमित्त को लेकर आश्रम के सभी लोगों पर बिगड़े। कुछ हल्ला सा हुआ। सभी लोग एकत्र हो गये। गुरु जी अप्रसन्न हैं। सभी अपनी-अपनी गर्दन झुकाये खड़े हैं, डाट खा रहे हैं। छोटे ब्रह्मचारी के आते ही मानो सबको छुटकारा मिल गया—उन्होंने आकर मानो सब

की लाज रख ली—सब का दोष अपने ऊपर ले लिया। गुरु जी की दृष्टि इन्हीं पर केन्द्रित हो गई। बोले "हटो, यहाँ से निकलो। यह स्थान बच्चों के लिये नहीं है। तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं है। कोठारी ! हटाओ इनको, अभी कुटिया खाली कराओ। जाओ, यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं।"

"कहाँ जायँ महाराज ?"

"जाओ, जहाँ ठीक समझो, रहो। कोठारी ! तीन मील दूर वह स्थान इन्हें बता दो। रहना चाहें, तो वहीं रहें या चले जायँ जहाँ ठीक समझें।" "जो आज्ञा" कह कर दण्डवत प्रणाम किया। अपना सामान लिया। सदा की भाँति कोठारी ने एक सप्ताह की खाद्य सामग्री दे दी। सब कुछ लेकर वहाँ चले गये और रहने लगे।

दिन-रात बीतने लगे। साधन-पथ अग्रसर होने लगा। गुरुवार को गुरु चरणों के दर्शनार्थ जाते और सात दिन किये हुये अभ्यास का अनुभव सुनाकर नवीन आदेशोपदेश ले कर चले आते। गुरु-चरणों के दर्शन से हृदय को नवीन स्फूर्ति मिलती साधन-पथ पर प्रकाश मिलता। निष्ठा दृढ़ होकर क्षमता बलवती होती और सद्गुरु कृपा के सहारे इष्ट उतरता आता। ब्रह्मचारी जी श्री गुरुकृपा से साधन पथ की उच्चतम सीमा की ओर जिस तीव्र गति से बढ़े वह अद्वितीय, प्रशंसनीय और अनुकरणीय रही।

गुरु जी ने एक बार एक सेवक भेज कर पुछवाया—"हम आना चाहते हैं क्या वहाँ पर स्थान खाली है ?" उत्तर

मिला "स्थान बिलकुल खाली नहीं है ?" सेवक ने समझाया "गुरु जनों से व्यवहार बहुत संभल कर करना चाहिये। जैसा आपने कहा वैसा यदि हम जाकर कहेंगे, तो आप पर तो प्रायः गुरु जी अप्रसन्न हैं ही हमारी भी आफत आ जायगी। ठीक से तो हम यही कह देंगे कि वहाँ गुफाओं में कई कमरे खाली हैं। हम देख आये हैं आप चल सकते हैं।" उत्तर मिला—"देखिये, आपकी आयु, आपकी विद्या, और आपकी गुरुभक्ति को हम सभक्ति नमस्कार करते हैं। आप हम से बड़े हैं आपका हम सम्मान करते हैं। परन्तु इस समय आप दूत की हैसियत से आये हैं। गुरु जी का प्रश्न आपने हमें सुनाया है हमारा उत्तर जैसा हम कहते हैं श्री चरणों में निवेदन कर दीजिये कि यहाँ पर एक भी कमरा खाली नहीं है। इसके बाद अपनी ओर से जो कुछ आपको कहना हो आप अच्छी तरह से कह सकते हैं। परन्तु हमारा उत्तर हमारे ही शब्दों में कहियेगा। गुरु जी अप्रसन्न होंगे तो हम भुगत लेंगे आपको क्या ? आप तो सूचनावाहक हैं, इस समय।"

दूत ने आकर उत्तर सुनाया। सुन कर गुरु जी मौन रहे। परन्तु छोटे ब्रह्मचारी की यह धृष्टता की बात आश्रम भर में फैल गई। उन्होंने गुरु जी का बहुत अपमान किया है। अबकी गुरुवार को आयें तो इन्हें ठीक करना चाहिये। इस प्रकार की भावना सारे आश्रम में व्याप्त हो गई। आश्रम के बड़े पुराने सेवक गुरुवार की प्रतीक्षा करने लगे। गुरुवार आया और सन्ध्या होते-होते ब्रह्मचारी भी गुरु जी के समीप आ पहुंचे। देखा प्रायः सभी लोग एक के बाद एक गुरु जी के समीप आ

बैठे । आज सभी की आँखों में ब्रह्मचारी की ओर एक विशेष गम्भीर दृष्टि है । आपस में एक दूसरे की आँखें मिल कर कह लेती हैं कि देखो इनकी धृष्टता का फल अब मिलता ही है । अब सभी बुद्धिमान अपनी-अपनी बुद्धि टटोल रहे थे कि किस प्रकार उस प्रसंग को गुरु जी के सम्मुख उपस्थित करें । एक, जो गुरु जी के कुछ विशेष कृपापात्र समझे जाते थे, बोल ही पड़े,—"महाराज, गुरु की इच्छा की अवहेलना करने वाला किस प्रायश्चित्त का भागी होता है । इच्छा को अवहेलना तो एक प्रकार से गुरु की अवज्ञा ही हुई । इससे तो वह गुरुद्रोही ही सिद्ध होता है । फिर ऐसे गुरुद्रोही के साथ क्या बर्ताव होना चाहिये ?" गुरु जी आश्रम के वातावरण से परिचित थे ही, किन्तु उन्होंने कुछ तटस्थ से होकर कहा— "अपना प्रश्न किसी उदाहरण से स्पष्ट करो । अभी तुम्हारा तात्पर्य ठीक स्पष्ट हुआ नहीं ।" अब तो प्रश्नकर्ता संकोच में पड़ गये । सामने स्पष्ट कैसे कहें । किन्तु गुरु आज्ञा थी, कहना ही पड़ा । कह गये—"उस दिन की बात है जब महाराज ने उस स्थान पर जाने की इच्छा प्रकट की थी और पुछवाया था छोटे ब्रह्मचारी से स्थान के सम्बन्ध में, तो वहाँ गुफाओं में कई कमरे खाली रहते हुये भी इन्होंने कह दिया कि स्थान बिलकुल खाली नहीं है । श्री चरणों के प्रति इनकी इस धृष्टता से आश्रम के सभी लोगों को महान् क्षोभ है और महाराज जी से अब हम जानना चाहते हैं कि इनके साथ हम लोगों का कैसा व्यवहार हो ?"

गुरु जी बोले, "क्यों जी, इस सम्बन्ध में तुम क्या कहना चाहते हो ?"

छोटे ब्रह्मचारी ने कहा, 'मेरे साथ आश्रमवासी कैसा व्यवहार करें यह अनुशासन तो श्री चरण ही देने में समर्थ हैं। हाँ, हम इतना ही कह सकते हैं कि उस दिन जो कहा था वही सत्य था और अब भी वही परिस्थिति है कि वहाँ गुरु जी के लिये कोई स्थान खाली नहीं है।"

उस पक्ष से आवाज आई—"क्यों, ब्रह्मचारी, क्या कोने के वे दो कमरे और सामने के दो कमरे खाली नहीं हैं?"

उत्तर मिला, "आपको तो वहाँ का बोध है नहीं। आप से हम अधिक विश्लेषण क्या करें!"

"समझा दो इन लोगों को। जो बात हो, स्पष्ट कह दो।" गुरु जी ने कहा।

"महाराज, इन लोगों से बताने की बात तो है नहीं हम क्या कहें? हम तो प्रार्थना रूप में ही कह सकते हैं।"

"अच्छा, हमी से कह दो। ये लोग सुनना चाहते हैं तो सुना दो।"

छोटे ब्रह्मचारी ने कहा, "जहाँ तक हम समझ पाये हैं गुरु चरणों का निवास मिट्टी पत्थर के कमरों में तो होता नहीं। उनके निवास के लिये भक्तों के हृदय का कमरा चाहिये। मेरे पंचकोशों के समस्त कमरों में श्री चरणों का निवास पहिले से ही हो चुका है। जिस दिन हमने श्री चरणों का पवित्रतम चरणोदक ग्रहण किया था, उसी समय अपने हृदय के कमरों को पूरा खाली कर इन्हें वहाँ आसीन करा

दिया था। अब हमारे पास कोई खाली कमरा नहीं है। गुरु देव तो रोम-रोम में व्याप्त हो चुके हैं। यदि हमें पहिले दिन विदित होता कि भविष्य में फिर कभी स्थान की माँग होगी तो पंचकोशों में से कोई एक दो रिक्त रख लेते। पर अनभिज्ञता-वश अपने सब कमरे पहिले ही भर रखे हैं—और रही बात उन मिट्टी-पत्थर के कमरों की तो महाराज जी जानते ही हैं कि सब खाली पड़े हैं यदि वहीं निवास की इच्छा होती तो पधार ही जाते। हमसे पुछवाने की आवश्यकता ही न थी। इसलिये जिन कमरों के लिये महाराज जी ने पुछवाया था उन्हीं के लिये हमने उत्तर दिया था।"

इतना कह कर ब्रह्मचारी एक लम्बी साँस खींच कर मौन हो गये। विकसित हृदय कमल की वह आभा संकुचित सी हो गई। मुखमुद्रा म्लान हो गई। मानों अन्तर्हृदय की वेदना जाग्रत हो उठी है। कारण कि आज उनकी वह निधि लुट गई है जिसे वे अपने हृदय के अन्तरतम में बड़ी सावधानी से सदा ही छिपा कर अब तक सम्भाले हुये थे। आज लोगों ने उन्हें विवश कर दिया कि वे स्वयं अपने मानस पट के रहस्यमय गोपनीय चित्रों को खुले आम सब के सामने प्रकट कर दें। जो कहने की वस्तु नहीं थी, वह उन्हें आज बरबस कह देनी पड़ी। वातावरण स्तब्ध हो गया। उपस्थित मण्डली का हृदय धड़कने लगा। नेत्र एक दूसरे को देख कर अपने पर लज्जित हो रहे हैं। जहाँ उन्हें केवल कोयले का भाण्डार समझ पड़ा था, वह तो चमकते हुये हीरों की खान निकली। जहाँ उन्होंने दिन में भी अंधकार देखा था वहाँ चिर प्रकाशित अखण्ड प्रभा का साम्राज्य दृष्टिगोचर हुआ। सभी को अपनी

अदूरदर्शिता पर खेद हुआ। सभी ने अपने मलिन हृदय को ब्रह्मचारी जी के निर्मल भावों से धोकर पवित्र किया।

इधर गुरु जी के नेत्रों में प्रेमाश्रु छलक उठे, क्योंकि अब तक शिष्य के हृदय के आत्मसमर्पण का भाव उस हृदय में ही गुप्त था बाहर नहीं निकला था। गुरु जी के हृदय में भी वह सुरक्षित और गुप्त था। किन्तु जब एक हृदय से उसका विवरण बाहर निकला तब दूसरा हृदय भी उसे अपने में छिपाये रहने में असमर्थ हो उठा। गुरु जी के हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ आया। इस समय गुरु और शिष्य समाज के बीच केवल मौन का ही साम्राज्य रहा। किसी को स्मरण नहीं कितना समय इस भाव-समाधि में बीत गया। सहसा गुरु जी ने आदेश दिया, "सब लोग चले जाओ"। एक के बाद एक उठ कर सब चले गये किन्तु अभी छोटे ब्रह्मचारी का आसन नहीं उठा। सबके साथ वे कैसे उठें। उन्हें तो अभी अपने अपराध की क्षमायाचना करनी है। एकान्त पा कर गुरु से जी बोले, "भगवन्, आज मुझे गोपनीय विषय का सबके समक्ष प्रकाश करना पड़ा है, इसके लिये क्या प्रायश्चित करना होगा? गुरु जी ने कहा, "है तो यह अपनी निष्ठा का विषय, अवश्य गोपनीय, पर तुमने तो हमारी आज्ञा से कहा है इसलिये इस विषय में अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। सुन तो लिया लोगों ने पर यह निष्ठा कोई बँटा नहीं सकता। संसार का प्रवाह ही ऐसा है कि सुन, जान कर भी विरलों की ही सत्य में प्रवृत्ति होती है।"

—:२:—

चौथा अध्याय

कुछ चमत्कारपूर्ण घटनाएँ

श्री महाराज जी ने उत्तरकाशी में गुरु जी के समीप रह कर तपश्चर्यापूर्वक शास्त्राध्ययन और योगाभ्यास पूर्ण किया। २५ वर्ष की अवस्था में आत्मनिष्ठ होकर हिमालय से नीचे उतरे। गुरु जी भी साथ चल दिये। कुछ दिन ऋषीकेश के समीप कजलीवन में निवास किया। यह अत्यन्त एकान्त और निर्जन स्थान है। घनघोर जंगल, जहाँ हिंसक जीव जन्तु साधारण ही विचरते हैं। ऐसे एकान्त स्थान में यदि कोई साधु महात्मा कुछ समय रुक जाता है, तो शीघ्र ही समीप व दूर के गाँवों में ख्याति हो जाती है और स्वाभाविक ही लोग दर्शन के लिये दौड़ पड़ते हैं। दर्शनार्थियों में एक ब्राह्मण-महात्माओं की सेवा शुश्रूषा के निमित्त कुछ दूध लाया करता था। अपने गुरु जी की सेवा के लिये महाराज श्री उस ब्राह्मण से प्रतिदिन आधा सेर दूध ले लिया करते थे और रात्रि में गरम करके गुरु जी को पिला देते थे।

एक दिन ऐसा हुआ कि दूध लाते समय ब्राह्मण की स्त्री ने कहा, "आज दूध कम है, बच्चों के लिये कम पड़ेगा" किन्तु ब्राह्मण जैसे दूध रोज लाता था ले आया। महाराज श्री ने रोज की भाँति उस दिन भी दूध लेकर गरम करके गुरु जी के सामने रख दिया। गुरु जी ने कहा, "इस दूध में आज क्लेश है, हम इस दूध को नहीं पियेंगे। दूध वाले को उसे

लौटा दो श्रोर उससे दूध लेना बन्द कर दो।" महाराज श्री ने वैसा ही किया। इसके बाद लगभग १५ दिन के पश्चात् उस ब्राह्मण का पुत्र मर गया। सारी बस्ती में यह चर्चा होने लगी कि महात्मा जी नाराज हो गये हैं। इसलिये इस ब्राह्मण का लड़का मर गया। महाराज श्री ने यह बात अपने गुरु जी से कही। उन्होंने कहा कि जब उस लड़के की अर्थी श्मशान में आवे, तो लोगों से कहना कि उसको अभी न जलावें श्रौर पहिले हमको बुला लें। जब उस लड़के की अर्थी श्मशान में आई तो उसको वहीं रख दिया गया। इतने में गुरु जी भी श्रा गये। इन्होंने अर्थी की सब रस्सियाँ खोलवाईं और मृतक के शिर पर अपने चरण से धक्का देते हुये कहा, "इतना क्यों सोता है?" इस पर वह मृतक जी उठा। सबके सब श्राश्चर्य चकित हो गये। वे सब महात्मा जी को बारी-बारी से प्रणाम करने लगे। अपनी कुटिया पर वापस आते ही गुरु जी ने महाराज श्री से कहा, "अभी यहाँ से चलो, नहीं तो यहाँ के सब मुर्दे हमारे सिर पड़ेंगे।" इतना कहकर उन्होंने वह स्थान छोड़ दिया और गुरु शिष्य एक दूसरे से पृथक् हो गये।

एक बार महाराज श्री ने देखा कि गंगा जी में भीषण बाढ़ आ रही है, प्रतिक्षण पानी ऊँचा उठता जा रहा है। किनारे पर बसे सभी महात्मा विपत्तिजनक क्षेत्रों से हट चुके हैं। किन्तु दो साधु इस बाढ़ की तनिक भी चिन्ता न करते हुये अपने-श्रपने तखतों पर, जो पास ही किनारे के कीकर के पेड़ों से बँधे निश्चिंत बैठे हुये हैं। आपको बड़ा आश्चर्य हुश्रा कि जब सभी साधु श्रपनी-अपनी रक्षा के लिये सुरक्षित

स्थानों का चले गये हैं तो ये क्यों नहीं गये ? एक पेड़ पर आप भी चढ़ गये और उनकी गति विधि देखने लगे ! तीन दिन बीत गये परन्तु वह दोनों साधु तथा स्वयं भी अपने-अपने स्थान पर डटे रहे। गंगा की बाढ़ से जल-प्रवाह के वेग का सहन करना उन पेड़ों के लिये कठिन हो गया और एक पेड़ जड़ से उखड़ कर बह चला। साथ ही साथ उस तखत पर बैठा हुआ वह साधु जो उस पेड़ से बँधा था बह चला। महाराज श्री ने देखा कि उस बहते हुये साधु के चेहरे पर कोई चिन्ता नहीं थी, उलझन नहीं थी, व्यग्रता नहीं थी, अपितु प्रसन्न मुखमुद्रा में मुसकराता हुआ दूसरे साधु से बोला, "नमो नारायण, अब तो हम चले।" दूसरे साधु ने भी उसी प्रकार की प्रसन्नमुद्रा में दृढ़ शब्दों में उत्तर दिया "नमो नारायणाय, जहाँ कहीं भी जिस परिस्थिति में रहना, भगवान का स्मरण करते रहना और प्रसन्न रहना।" बड़े मार्मिक थे साधु के यह शब्द, एक अमिट रेखा खींच गये महाराज श्री के हृदय-पटल पर। महाराज श्री ने विचार किया कि कठिन से कठिन परिस्थिति में प्रसन्न रहना और भगवान् का चिन्तन करते हुये धीरज नहीं खोना चाहिये। सुनने में आश्चर्य होता है कि वह बहते हुये तखता पर बैठा हुआ साधु अन्त तक सुरक्षित ही रहा—उसका तखत धारा प्रवाह में वेग से बहता हुआ थोड़ी दूर पहुँच कर किनारे लग गया। साधु जीवित सुरक्षित रहते हुये जल प्रवाह के बाहर आ गया।

कुछ दिन आपका निवास ऋषीकेश में ही रहा। एक दिन की बात है एक निर्जन स्थान में आप ध्यानस्थ बैठे थे। कलकत्ते का एक मारवाड़ी सेठ जो जाड़े के दिनों में इस प्रदेश

में आकर साधुओं, महात्माओं, ब्रह्मचारियों को शाल बाँटा करता था, उधर आ निकला। इस समय भी महात्माओं को वितरण करने के लिये कुछ शाल ले आया था। देखा कि यह मैदानी बाबा ठिठुरते जाड़े में केवल एक उपरना शरीर पर डाले हुये ध्यानमग्न बैठे हैं। जाकर एक शाल ओढ़ा दी और सामने बैठ गये। थोड़ी देर में जब महाराज श्री ने आँखें खोलीं तो देखा कि सामने एक मारवाड़ी सेठ जी बैठे हुये हैं—पूछा, "यह शाल आपने ओढ़ायी है? आप क्या चाहते हैं? आपने क्या समझ कर इसे मुझे ओढ़ायी है? यदि हमें गरीब समझ कर ओढ़ायी है तो यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि कोई साधु महात्मा गरीब नहीं होते, और यदि आपका कोई दूसरा प्रयोजन हो, तो बताइये" सेठ जी दण्डवत प्रणाम करते हुये बड़ी नम्रता से बोले, "भगवन्, हम मारवाड़ी व्यापारी हैं, पंडितों के द्वारा शास्त्रों में सुना है कि महात्माओं को दान देने से एक का हजार मिलता है, इसलिये एक शाल देकर बदले में आपके आशीर्वाद से एक हजार पाने की आशा करते हैं। यह सुन कर महाराज श्री ने बड़ी ही शान्ति के साथ धीरे से उस शाल को उतारा, उतार कर तहाया और उसे वापस देते हुये कहा, "एक तो अभी ले लो; शेष ९९९ का प्रयत्न करूँगा," इस गूढ़ उत्तर से सेठ जी चकित हो गये और भयभीत भी हो गये कि कदाचित् महात्मा जी रुष्ट हो गये। थोड़ी देर चुपचाप बैठे रहे। तब महाराज श्री उन्हें उपदेश देते हुये बोले, "भला यह बताइये कि यदि संसार की सारी सम्पत्ति वैभव आपकी हो जाय, संसार के सारे मकान, सुख-सामग्री आपकी हो जाय, तो क्या वह सब आपके काम

आयेगा ? जब यहीं सब कुछ छोड़ जाना है, पूर्व की कमाई खा रहे हो, आज आपको दान देने को भी सुविधा प्राप्त है, फिर भी आपकी दृष्टि जगत् की ओर है। यदि पूर्व की कमाई खाते हुये आगे के लिये उन्नति नहीं करोगे तो क्या लाभ ?" यह सुन कर सेठ जी ने क्षमायाचना की और प्रणाम करके यह विचार करते हुये चले कि कम से कम एक साधु ऐसा तो मिला जिसने वास्तव में साँसारिक सुखों का त्याग किया है। वस्तु के अभाव में तो सभी त्यागी हैं, किन्तु वस्तु की प्राप्ति में त्याग करना सच्चा त्याग है।

ब्रह्मचर्य्यावस्था में आपने कई बार बदरीनारायण को यात्रा की। एक बार इनके साथ तीन और ब्रह्मचारी साथ हो लिये। थोड़ी दूर जाने के बाद आपने शेष तीन ब्रह्मचारियों से कहा "देखो मैं तो अपने पास रुपया पैसा द्रव्य आदि कुछ भी नहीं रखता और यदि आप लोगों में से किसी के पास कुछ हो तो या तो उस धन को अलग कर दो। या जिस किसी के पास हो वह स्वयं हम सब से अलग हो जाय, क्योंकि हम सब साथ के ब्रह्मचारियों को एक सा होना चाहिये, नहीं तो कष्ट होगा। जिसके पास रुपया पैसा होगा, वह यदि सब के साथ रहेगा तो संकोचवश उसका उपयोग नहीं कर सकेगा और यदि उपयोग न कर पायेगा तो उसे मन ही मन कष्ट होगा। इसलिये उसे या तो स्वयं अलग हो जाना चाहिये या उस द्रव्य को ही अलग कर देना चाहिये। एक ब्रह्मचारी के पास तीन अशर्फियाँ थीं। उसने बताया कि मेरे पास तीन अशर्फियाँ हैं, इन्हें आप जैसा चाहें वैसा करें। हमें तो साथ ही रहना है।"

निश्चय किया गया कि अमुक वृक्ष के नोचे उनको पृथ्वी में गाड़ दें और बदरीनारायण की यात्रा समाप्त होने पर लौटते समय इनको निकाल लिया जायगा। तीनों अशर्फियों को निश्चित स्थान में गाड़ दिया गया और चारों ब्रह्मचारी यात्रा में साथ-साथ चल दिये।

पैदल यात्रा तो थी ही। शारीरिक परिश्रम व स्थान-स्थान के जलवायु के कारण एक सप्ताह यात्रा करने के बाद उसी ब्रह्मचारी को जिसकी अशर्फियाँ पृथ्वी में गाड़ दी गई थी विशूचिका हो गई। दशा खराब हो गई और सुधार के लक्षण नहीं रहे। अन्त में उसी में उनका शरीर भी शान्त हो गया। अन्त्येष्टि क्रिया करने के पश्चात् शेष तीनों ब्रह्मचारी आगे बढ़े और बदरीनारायण की यात्रा पूरी की। दर्शन लाभ मिला। वापसी यात्रा में जब वे उसी स्थान पर पहुँचे जहाँ अशर्फियाँ गाड़ी गई थीं, महाराज श्री ने कहा कि उन अशर्फियों को निकाल लिया जाय और दान-दक्षिणा में वितरण कर दिया जाय। उस स्थान पर पृथ्वी खोदी गई, देखा कि उन अशर्फियों के चारों तरफ अशर्फी के ही रंग का एक बहुत पतला सर्प लिपटा हुआ है। महाराज श्री ने कहा, "वेदशास्त्र में लिखा है कि मृत्यु के समय गड़े हुये धन पर मन लगा रहने से सर्प होना पड़ता है। इसका प्रमाण यहाँ प्रत्यक्ष है। ऐसा मालूम पड़ता है कि उस ब्रह्मचारी का मन मरने के समय इन्हीं अशर्फियों में लगा रहा। इसीलिये वे अब सर्प बनकर यहाँ अपने धन की रक्षा कर रहे हैं।" महाराज श्री ने उस सर्परूप ब्रह्मचारी को सर्पयोनि से शीघ्र छुटकारा दिलाने के लिये पकड़ लिया और गंगा जी में प्रवाह कर

दिया और अशर्फियों को दान-दक्षिणा व ब्राह्मण-महात्माओं के भोजन आदि में खर्च करा दिया ।

भ्रमण करते हुये व मार्ग में तीर्थों में निवास करते हुये आप प्रयाग आ गये । उन दिनों प्रयाग में मछली मारनेवालों का विरोधियों से वाद-विवाद चल रहा था । निर्णय के लिये: दोनों पक्ष के लोग महाराज श्री के पास आये । सब से महा-राज श्री ने कहा "आप लोग कल आइये ," आज्ञानुसार प्रात काल सब आ गये । किन्तु मछुओं ने आने के पहिले ही जाल लगा दिये । महाराज श्री ने विरोध करनेवालों से कहा, "जाओ चने के बराबर ५-७ कंकड़ उठा लाओ ।" जब वह कंकड़ आ गये तब महाराज श्री ने उन कंकड़ों को विरोध करनेवालों के हाथ में देते हुये कहा कि जाओ इन कंकड़ों को गंगा जी में जहाँ मछली मारने वालों ने जाल लगा रखा है वहाँ फेंक दो, अपने-अपने घर जाओ और शाम को उस स्थान पर जाकर देख लेना ।" उन लोगों ने वैसा ही किया और समय से पहिले ही वहाँ उपस्थित हो गये । मछली मारनेवालों ने समय आने पर जाल निकाले परन्तु देखा कि जाल में एक भी मछली नहीं फँसी । सब लोग आश्चर्यचकित हो गये और विरोध करनेवाले उच्च स्वर से महाराज श्री का जय-जयकार करने लगे । इसका विशेष फल यह हुआ कि विरोध करनेवालों के साथ-साथ मछली मारनेवालों की भी महाराज श्री के प्रति अपूर्व श्रद्धा हो गई ।

वर्षों व्यतीत हो गये । अनेकानेक रोचक एवं शिक्षाप्रद घटनायें घटीं और घटती रहीं, जिनका उल्लेख करना अत्यन्त कठिन है ।संस्कारी प्राणी को सभी पदार्थ स्वयं सदैव प्राप्त

होते रहते हैं। गुरुदेव की कृपा से आपको योग के अनेक विधि-विधानों व अनुष्ठानों की क्रियायें प्राप्त थीं। सदैव आप अपनी साधना में ही संलग्न रहते थे। निर्जन वनों के वृक्ष-मूल ही आपके निवास स्थान थे। वन्य फल, मूल, शाकादि ही आहार था। स्वभावतः आये हुये सिंह, व्याघ्र, मृग आदि जीव ही आपके सहवासी थे। कभी किसी से कोई याचना या प्रतिग्रह न करना, जन समाज से दूर रहना, नारीवर्ग को दर्शन तक न देना, धन-परायण कुबेर तक को तृण के समान समझना आपके स्वाभाविक गुण थे। इसी प्रकार गंगोत्तरी (हिमालय), नेपाल, कश्मीर, विन्ध्याचल, अमरकंटक आदि वनों में तपश्चर्यापूर्वक रह कर आत्मानन्द का अनुभव करते रहे।

—०—

पाँचवाँ अध्याय

पुनः गुरु-मिलन और संन्यास

प्रयाग में कुम्भ पड़ा। सम्पूर्ण भारतवर्ष के महात्मागण, साधु-संन्यासी एकत्र हुये। आप भी प्रयाग आ गये। गुरुदेव का समागम हुआ। ऐसे शुभ अवसर को पाकर आपने गुरुदेव से प्रार्थना की कि भगवन्, अब यदि योग्य समझें तो संन्यास दीक्षा प्रदान करें। गुरु जी ने सर्वथा अधिकारी समझ कर आज्ञा दे दी।

त्रिवेणी संगम की सितासित धारा पर संन्यास का कर्म काण्ड हुआ। समष्टि भण्डारा हुआ और समस्त ब्रह्मचारी साधु, दण्डी स्वामियों को वस्त्रादि देकर सम्मानित किया गया। गुरुदेव ने आपको ३६ वर्ष की आयु में संन्यास दीक्षा देकर दण्ड-कमण्डलु और कौपीन प्रदान किया। आज से आप का नाम "श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती महाराज" हुआ। सभी साधु महात्मा धार्मिक जन अब तो और भी आपके दर्शन तथा आशीर्वाद के लिये आकुल हो उठे। किन्तु आप विशेषतया निर्जन वन-स्थानों में ही विचरण करते रहे। जनता जहाँ कहीं आपका पता लगा पाती, दर्शनों के लिये वहीं पहुँच जाती। कदाचित् पर्व समयों में आप काशी, प्रयाग, अयोध्या आदि नगरों में आ जाते तो आपके समीप दर्शनार्थियों का मेला ही लग जाता था।

महाराज श्री एकान्तप्रिय थे। जहाँ भी रहते एकान्त

में ही निवास करते। भक्तों को यह बात पूर्णतया विदित थी। इसलिये आपके निवास के लिये विश्राम के लिये प्रत्येक स्थान में भक्त लोग ऊपर के ही भाग में प्रबन्ध करते। ऊपर के स्थान को महाराज श्री ऊपर से ही बन्द कर लेते और इस प्रकार उनका स्थान सर्वथा एकान्त बन जाता। आपका दर्शन असम्भव तो नहीं, पर दुर्लभ और कठिन अवश्य था। आपके विश्रामस्थान में दर्शन करने के लिये भक्तों को पर्याप्त समय खर्चना पड़ता था। दर्शन के निमित्त भक्तों का एकत्रित होना प्रायः ४ बजे शाम से प्रारम्भ होता और इसका क्रम १०-११ बजे रात्रि तक चलता रहता। दर्शनार्थी उस स्थान के निचले भाग में एकत्र होते रहते और महाराज श्री के दर्शन के समय तक जो लगभग ८॥-९ बजे रात्रि में था, बैठे प्रतीक्षा करते रहते। समय आने पर महाराज श्री दर्शनार्थियों की परीक्षा भी ले लेते थे। रात्रि ९ बजे महाराज श्री के आज्ञानुसार समीप का ब्रह्मचारी सेवक सब दर्शनाथ भक्तों की सूची तैयार करता और उसे महाराज श्री के समीप रख देता। उस सूची को दे देखकर महाराज श्री प्रायः कहीं देते, "जाओ, कह दो, आज नहीं मिलेंगे।" ऐसा अवसर बहुधा आ जाता, जबकिमहाराज श्री को यह कहलाना पड़ता कि सब से कह दो, "आज नहीं मिलेंगे।" इसलिये आपने इन्हीं शब्दों का एक साइनबोर्ड भी बनवा लिया था "आज नहीं मिलेंगे" और ऐसा अवसर आने पर यह साइनबोर्ड दरवाजे पर ही टांग दिया जाता था। भक्त लोग निराशा में भी प्रतीक्षा करके एक-एक उठ कर वापस होने लगते। वापस होने का क्रम भी इसी प्रकार धीरे-धीरे चलता जैसा

आने का और इस प्रकार रात्रि के १०॥-११ बज जाते। उस समय महाराज श्री की आज्ञा होती, "देखो, कोई दर्शनार्थी नीचे बैठा है" देखा गया तो मालूम पड़ा कि अब भी २-३ भक्त लोग बैठे हैं। आज्ञा हुई "बुला लो उन दर्शनार्थियों को" ऐसे समय में महाराज श्री के मुख से यह शब्द निकल पड़ते, "यही हैं दर्शनार्थी; शेष तो ऐसे हो सोच समझ कर आ जाते हैं कि चलो इधर-उधर शाम को टहलने नहीं जायेंगे, महात्मा जी का दर्शन ही कर आवें" इन दो तीन भक्तों को दर्शन देते समय महाराज श्री बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में मिलते, अधिक समय तक उपदेश भी करते और अपने वचनामृत से भक्तों को ऐसा तृप्त कर देते कि उनको अधिक देर तक प्रतीक्षा का कष्ट परिणत होकर प्रसन्नता की लहरों में हिलोरें लेने लगता और लौटते समय वे यही समझते कि मानो उन्हें कोई निधि मिल गई हो। सच भी तो है निधि अवश्य मिल गई, ऐसी निधि जो संसार के किसी कोने में लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं मिला करती।

———

छठवाँ अध्याय

स्वच्छन्द विचार और संसार

सन् १९३० ई० के प्रयाग कुम्भ के अवसर पर महाराज श्री के दारागंज में निवास करने की पूर्व व्यवस्था हो चुकी थी। गंगागंज, प्रयागनिवासी एक भक्त ने अपने दारागंज स्थित क्षेत्र को जिसमें लगभग १० कमरे थे खाली कराकर सुरक्षित रख छोड़ा था। महाराजश्री के आगमन की प्रतीक्षा की जा रही थी। महात्माओं की विचारधारा स्वतन्त्र तो हुआ ही करती है। महाराज श्री का विचार हुआ कि प्रयाग कुम्भ-मेले में जहाँ सब जा रहे हैं, वहाँ नहीं जायँगे और प्रयाग से १०-१२ मील दूर पश्चिम में गंगा-तट पर कौरवेश्वर महादेव के मन्दिर में जिसमें एक अत्यन्त छोटी कोठरी है उसी में ठहर गये। परन्तु इधर यह भी सोचा कि किसी भक्त ने प्रयाग क्षेत्र में एक विशाल भवन खाली रख छोड़ा है, उसे भी अपने ही काम में ले लेना चाहिये, ताकि भक्त के हृदय में यह ठेस न लगे कि उसकी सेवा बेकार हो गई। इसलिए उसमें अपने कुछ दण्डी संन्यासी शिष्य मेला भर के लिये ठहरा दिये। भक्त को जब मालूम पड़ा कि महाराज श्री प्रयाग नहीं आवेंगे, तो उन्हें कष्ट हुआ; किन्तु यह जान कर कि महाराज श्री की आज्ञा से उन्हीं के ही दण्डी संन्यासी शिष्यगण उसमें ठहराये गये हैं, उन्हें सन्तोष हुआ;

फिर भी "श्रेयांसि बहु विघ्नानि भवन्ति महतामपि" के अनुसार एक विघ्न आया। व्यापारिक सम्बन्ध से सम्बन्धित एक कलकत्ता निवासी धनी मानी प्रेमास्पद मित्र ने उस भक्त से यह इच्छा प्रकट की कि वह उन्हें दारागंज स्थित मकान मेले भर के लिए दे दें, क्योंकि उनके परिवार के लोग मेले में प्रयाग निवास करना चाहते हैं। भक्त ने यह जानते हुये कि मकान खाली नहीं है, किन्तु यह सोच समझ कर कि महाराज श्री तो उस मकान में ठहरे हैं नहीं, खाली कराया जा सकता है। भक्त ने सेठ जी की बात को टाला नहीं। उन्होंने महाराज श्री से प्रार्थना की, "आप तो उस मकान में ठहरे नहीं हैं यदि, उचित समझें, तो सेठ जी जो उनके घनिष्ठ मित्र हैं उनके परिवार के लिये संन्यासी महात्माओं से कह कर मकान खाली करा दें।" मर्यादा के विषय में महाराज श्री का विचार अत्यन्त उत्कृष्ट था। सेठ जी के परिवार के लिये महात्माओं साधु-संन्यासियों से मकान खाली कराया जाय, ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें महात्माओं का अपमान होगा। उत्तर दिला दिया, कि अब उस मकान में दण्डी-संन्यासी वर्ग ठहराये जा चुके हैं, उनसे यदि कहा जायगा कि सेठ जी के बाल-बच्चों के लिये मकान खाली कर दें तो उनका बड़ा अपमान होगा। इस लिये मेला भर मकान खाली नहीं किया जा सकता। आप उनके लिये कोई दूसरा प्रबन्ध कर दें।" भक्त ने सोचा कि साधु महात्मा ही लोग तो ठहरे हैं कुछ बल प्रयोग करके मकान खाली करा लिया जाय। यह बात महाराज श्री को मालूम पड़ी, तो उन्होंने अपनी आज्ञा को अधिक दृढ़ कर दिया कि किसी भी प्रकार

से तिवारी जी अपने मकान को खाली न करा सकें। वैसा ही किया गया। तिवारी जी निराश हो कर चुप रहे और मेले भर मकान नहीं खाली किया गया। किन्तु महाराज श्री फिर उस मकान में कभी नहीं ठहरे और अपनी तरफ से सदा के लिए उसे खाली कर दिया।

महाराज श्री का निवास इस समय कौरवेश्वर में हो रहा था। आपके एक परम भक्त कुबेरदत्त ओझा ने सुना कि महाराज श्री कौरवेश्वर में आ गये हैं तो वहीं गये और दर्शन किया। उनका नियम था दिन में प्रयाग में अपनी जीविका के लिये दफ्तर में नौकरी करते और शाम को ४ बजे साइकिल द्वारा महाराज श्री की सेवा में कौरवेश्वर पहुँच जाते। कुबेरदत्त दारागंज में ही रहते थे। उन्हें मालूम पड़ा कि दारागंज-स्थित गंगा-भवन में महाराज श्री के गुरु देव पधारे हैं। वहाँ गये; दण्डवत प्रणाम किया और चले आये। सायंकाल जब वह महाराज श्री के दर्शन करने कौरवेश्वर गये, तो वहाँ भी गुरुजी के प्रयाग पधारने की बात बतलाई। इस प्रकार नित्य वह गुरुजी का तथा महाराज श्री का दर्शन करते और एक दूसरे के यदा-कदा के शब्द इधर-उधर पहुँचा दिया करते। एक दिन गुरु जी ने कुबेरदत्त से कहा कि क्या स्वामी जी इधर कुम्भ के अवसर पर प्रयाग नहीं आवेंगे ? यह बात कुबेरदत्त के द्वारा महाराज श्री के पास पहुँची। महाराज श्री ने कहा कि हमारा विचार मेले में जाने का नही हैं। गुरुजी को जब यह मालूम हुआ कि महाराज श्री प्रयाग आने वाले नहीं हैं तो कहा, "मेला क्या

व्याघ्र है ? अच्छा, हमी उनसे मिलने किसी दिन चलेंगे"। गुरुजी की यह बात कुबेरदत्त ने जाकर महाराज श्री को बतलाई। महाराज श्री एकाएक चिंतित हो उठे और बोले, "अनर्थ हो जायगा, कहीं गुरुजी ही मेरे लिये किसी दिन न चल पड़ें। जाओ, अभी जाओ, प्रातःकाल ४ बजे तक कोई न कोई मोटर लेकर यहाँ आ जाओ। हम चाहते हैं कि कल प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले ही गुरु जी के दर्शन के लिये प्रयाग पहुँच जायँ।" ऐसा ही हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल ४ बजे से पहिले कुबेरदत्त एक मोटर लेकर कौरवेश्वर पहुँच गये और ६॥ बजे के लगभग महाराज श्री गुरु जी के समीप पहुँच गये। दण्ड उठाकर मर्यादापूर्वक प्रणाम करना चाहा। परन्तु गुरु जी ने उन्हें प्रणाम नहीं करने दिया। दण्ड हाथ से लेकर छाती से चिपटा लिया और समीप में आसन पर बैठा लिया। कहा, "महाराज, मर्यादा है, प्रणाम कर लें।" गुरु जी ने कहा, "बैठ जाओ, हमारी इच्छा ही यहाँ मर्यादा है"। गुरु जी के पास उस समय पचासों व्यक्ति इकट्ठे थे। यह देखकर सभी को आश्चर्य हुआ कि स्वामी जी को उनके गुरुजी भी इतना अधिक आदर देते हैं। किसी ने कहा, "क्यों न हो, अपनी स्थिति में पहुंचा हुआ देखकर गुरु जी व्यवहार में भी समानता करें, तो कोई अनुचित नहीं।" परन्तु इस ओर तो देखो कि गुरु जी को नमन के लिये वही उत्सुकता, मर्यादा पालन श्रेष्ठता और आदर्श है। गुरु जी ने इसी समय आज्ञा दी, "वन-पर्वतों में बहुत रह लिया। अब नगरों के समीप भी रहा करो, जिससे लोगों का कुछ उपकार हो सके।" इसके पश्चात् नगरों के निकट भी निवास होने लगा। गुरुजी

आपका इतना अधिक आदर सम्मान करते थे कि कभी-कभी कह देते थे, "वह तो हम से भी अधिक योग्य एवं विद्वान् हैं और प्रश्नों का उत्तर देने में तथा शंका समाधान करने में अद्वितीय हैं।"

किसी समय शिवकोटि महादेव के समीप श्री महाराज जी का चातुर्मास्य व्रत चल रहा था। एक साधु वेशधारी मनुष्य उस स्थान में आकर महाराज श्री का नाम ले लेकर गालियाँ बकने लगा। आश्रम निवासी सेवकगण जब गालियाँ बकनेवाले उस साधु की बकवास रोकने और न मानने पर उसे मार भगाने को उद्यत हुये, तब महाराज श्री ने सबको तुरन्त अपने पास बुलाकर कहा, "हम तुम लोगों को छोटी छोटी बातों से लेकर योग समाधि तक सब सिखा सकते हैं। पर गालियों पर सहनशीलता का पाठ शायद नहीं पढ़ा सकते। ईश्वर की कृपा है कि आज यह अवसर उपस्थित हो गया है। तुम्हें सहनशील बनने का अभ्यास करना चाहिये।" एक ब्रह्मचारी बोले, "क्षमा हो, स्वायंभुव मनु की आज्ञा गुरु निन्दा श्रवण का स्पष्ट निषेध करती है।" महाराज ने कहा, "ठीक है, इस पर विचार कर डालो कि निन्दा से क्या हानि-लाभ है ? यदि निन्दा से लोक में हानि समझते हो, तो यह स्मरण रखो कि सम्पत्ति विपत्ति एवं समस्त लौकिक कार्यों की सफलता विफलता प्रारब्ध के अधीन रहती है। निन्दायें प्रारब्ध को स्पर्श तक नहीं कर सकतीं। जो प्रारब्धाधीन पूर्व निश्चित है, वही होगा। निन्दा उसमें किंचिन्मात्र भी अन्तर नहीं डाल सकती। इधर शास्त्र-कारों का मत है कि निन्दक-जन महात्माओं का पाप बँटा

लेते हैं। इसलिये वे पारलौकिक उन्नति में सहायक ही होते हैं। संतगण निन्दकों को उत्कृष्ट भक्तों की श्रेणी में रखते हैं, क्योंकि श्रद्धालु भक्त तो पूजन आरती सेवा शुश्रूषा द्वारा महात्माओं का संचित पारलौकिक शक्ति उनकी कृपा के द्वारा बँटाते हैं; किंतु निन्दक लोग अपने लिये कुछ नहीं चाहते, प्रत्युत निन्दा करके उनका पाप ही बँटाते हैं। इसलिये वही उत्कृष्ट भक्त हैं और उन्हीं के द्वारा लाभ होता हैं। उनके द्वारा निन्दा रोकने का प्रयास नहीं करना चाहिये। वरन् अपना कार्य करते जाना चाहिये और उन्हें अपना कार्य करने देना चाहिये।" इस प्रकार समझाकर अपनी सेवक-मण्डली को रोक लिया। इधर वह साधुवेशधारी दुष्ट लगभग एक घन्टे तक गालियाँ बक कर पास ही वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिये बैठ गया। तब श्री चरण ने उसे बुलाकर कहा, "बहुत देर गाली का पाठ करते-करते आप थक गये होंगे, कुछ जलपान कर लीजिये"। आश्रम के सेवकों ने उसे मिष्ठान्न आदि से तृप्त किया और चलते समय उसे महाराज श्री की आज्ञा से दो रुपये इक्कागाड़ी के लिये भी दिये। बाद में पता चला कि वह अपने साथियों की गोष्ठी में जाकर इतने बड़े महात्मा के प्रति अपशब्द बकने पर बहुत पछताया। दूसरे दिन आश्रम के सामने आकर "स्वामी जी की जय हो, स्वामी जी, क्षमा करें, हमसे बहुत बड़ा अपराध हुआ" आदि आदि प्रायश्चित वचन बहुत देर तक बोलता रहा और क्षमा याचना कराता रहा।

ऐसी अनेक आदर्श घटनायें प्रकाश में आई। उनसे शिक्षा मिलती है और श्री चरण के उत्कृष्ट आदर्शमय, त्यागपूर्ण,

तपश्चर्यामय जीवन की झाँकी मिलती है। इसलिये आपके जीवन की कुछ घटनाओं का संक्षेप उल्लेख किया जा रहा है जिससे पाठकों को आपकी पुण्य-जीवनी का साधारण दिग्दर्शन हो जाय।

एक समय महाराज श्री का निवास प्रयाग में राजा ढिंगवस की कोठी में हो रहा था। समीप ही एक भक्त वकील साहब रहते थे। उन्होंने सुना कि महाराज श्री रात्रि भर आसन जमाकर बैठे-बैठे भजन करते रहते हैं। इच्छा हुई कि महाराज श्री का यह दृश्य देखा जाय। प्रार्थना करूँगा कि मैं यह दृश्य देख सकूँ। अतः उन्होंने प्रार्थना की, "महाराज जी मैंने सुना है कि आप रात्रि भर आसन में बैठे रहते हैं। मैं देखना चाहता हूँ।" महाराज जी हँस कर बोले, "क्या तुम रात्रि भर जाग सकोगे ?" उत्तर दिया, "अवश्य, कोशिश करूँगा।" महाराज जी ने कहा, "मेरा तो कोई हर्ज हैं नहीं, परंतु ध्यान रहे, कोई शब्द उच्चरण नहीं करना।" वकील साहब रात्रि भर बैठे रहे और सारी रात्रि समाप्त हो गई।

थोड़े ही समय में इस प्रकार की बात इधर-उधर फैली। कुछ दुष्ट-हृदय ईर्ष्यालु और विरोधी भी हो जाते हैं। सबने एक षड़यंत्र रचा। एक वेश्या को द्रव्य देकर समझा-बुझा कर तैयार किया कि रात्रि में महाराज जी के पास जाकर उन्हें डिगाने की वह कोशिश करे। वेश्याएँ लोभी तो होती ही हैं। पुरुष के वेश में और लोगों के साथ-साथ १०-११ बजे रात्रि में दर्शन के बहाने वहाँ तक पहुंच गई। सत्संग

चलता रहा। सत्संग हो जाने के बाद सब लोग तो वहाँ से चल दिये और नीचे उतर आये। परन्तु वेश्या वहीं बैठी रहो। महाराज जी के भय व तेज के कारण कुछ बोल नहीं सको। परन्तु वह कुछ देर बैठी रही। इधर सब लोग, जिन्होंने यह षड़यंत्र रचा था, नीचे उतर कर यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि क्या होता है। उधर उस वेश्या के शरीर व पेट में इतनी अधिक पीड़ा हुई कि चीख मार कर भागी। नीचे धूर्त लोग जो प्रतीक्षा में खड़े थे पूछा, "क्या हुआ ?" उसने अपनी पीड़ा का समाचार कह सुनाया। सब लोग सुनकर अत्यंत दुखी हुए और पश्चाताप करने लगे कि व्यर्थ ही में हम लोगों ने महाराज जी को कष्ट दिया। जब यह बात इधर-उधर साधारण लोगों में फैली तो महाराज श्री के प्रति अत्यधिक श्रद्धा चारों ओर से उमड़ पड़ी।

महाराज श्री की आज्ञा थी शूद्र अथवा स्त्री आश्रम में उनके निवास स्थान में आकर दर्शन-प्रणाम अथवा सत्संग करने की चेष्टा न करें। यदि कोई शूद्र या स्त्री उनका प्रणाम या दर्शन करना चाहती है तो जब कभी वह कहीं की यात्रा के लिये बाहर निकलें या बाहर से निवास स्थान पर लौटें तो फाटक पर प्रणाम दर्शन हो सकता है। एक समय की बात है जब प्रयाग में गंगातट पर एक मकान में आप ठहरे हुये थे, तो महमना मदनमोहन मालवीय के परिवार की एक विधवा स्त्री ने महाराज श्री से उनके निवास स्थान में दर्शन करने की आज्ञा माँगी। उत्तर वही साधारण था कि शूद्र अथवा स्त्री वर्ग उनके ठहरने के स्थान पर दर्शन सत्संग नहीं कर सकते

वह स्त्री विदुषी थी और सत्संगिनी भी। उसने महाराज श्री को पत्र लिखा कि हमारी किसी बहिन के ही उदर से आपका जन्म हुआ है। जिस माता से आपकी उत्पत्ति है उसी स्त्री-जाति से इतनी घृणा क्यों ? पत्र को महाराज श्री के पास किसी सेवक के द्वारा भेज दिया और कहा कि इसका उत्तर ले आना। महाराज श्री ने थोड़ी उपेक्षा कर दी और सेवक से कहला दिया कि इसका उत्तर फिर मिल जायगा। इस समय अवसर नहीं है। दूसरे दिन उसने फिर उत्तर के लिये आग्रह किया और कहला भेजा कि आज इसका उत्तर अवश्य मिल जाना चाहिये। महाराज श्री यह सब सुनकर कहने लगे कि इसने प्रश्न का तो अन्त ही कर दिया है, उत्तर भी असाधारण ही देना चाहिये। प्रश्नोत्तर इस प्रकार लिखा दिया—

"मैं आप लोगों के संसर्ग में नौ महीने रहा। उस समय मेरी कैसी दशा थी! उलटे टँगे थे, बन्धनों में जकड़ा था कष्ट का पारावार न था। इस प्रकार मलमूत्र के भांड में नौ महीने बीत गये। वे दिन मुझे आज भी नहीं भूलते। यही कारण है कि आप लोगों के सम्पर्क की इच्छा नहीं करता।" इस विषय में और आगे इस प्रकार लिखा था—

"कुम्हार घट बनाता है। उसे जन्म देता है। वह घट पक जाने पर यज्ञमंडल में पहुंच जाता है। परन्तु उसका बनाने वाला कुम्हार यज्ञमण्डप के बाहर ही खड़ा रहता है। उसे यज्ञमंडल में जाने की आज्ञा नहीं होती।"

यह पत्र उस विधवा स्त्री के पास पहुंचा दिया गया। पत्र पढ़ कर उसे और अधिक श्रद्धा उत्पन्न हो गई और ऐसे

अवसर पर के ताक में हो गई कि महाराज श्री गंगा-स्नान के लिये अथवा अन्यत्र कब जायेंगे। पता लगा कि कल प्रातः-काल ४ बजे नाव द्वारा संगम स्नान करने जायेंगे। वह भी उसी समय स्नान के लिये से चल पड़ी। गंगा-स्नान के समय दर्शन-प्रणाम कर आनन्दमग्न होकर कह पड़ी, "यहाँ तो सभी को दर्शन करने का अधिकार है।"

महाराज श्री का निवास दारागंज (प्रयाग) में हो रहा था। कलकत्ते के एक सेठ जी, जिनका मुकदमा हाईकोर्ट में चल रहा था, प्रयाग आये। कभी-कभो जब वह गंगा-स्नान करने जाते, तो दारागंज में महाराज श्री का दर्शन भी करते। महाराज श्री के दर्शन में एक विचित्र आकर्षण था। जो एक बार भी दर्शन कर लेता, वह फिर बार-बार दर्शन के लिये बाध्य हो जाता। सेठ जी की भी यही दशा हुई। एक बार दर्शन करने के बाद बार-बार दर्शन करने जाने लगे। लोगों से ख्याति भी सुन चुके थे कि बड़े उच्चकोटि के महात्मा हैं। इनके दर्शन और आशीर्वाद से सभी के कार्य सफल हो जाते हैं। सेठ जी भी अपने मुकदमें की बात महाराज श्री को सुना दी और प्रार्थना की कि कृपा हो जाय तो मुकदमे में सफलता मिल जाय। ऐसे अवसर पर महाराज श्री कुछ उत्तर तो नहीं देते थे; किन्तु उस प्रार्थी को उनका मूक आशीर्वाद अवश्य मिल जाता था। कुछ दिन बाद सेठ जी को मुकदमें में सफलता मिल गई। तब तो सेठ जी बहुत ही प्रसन्न हुये और जब महाराज श्री का दर्शन करने गये, तो एक दोना भर अशर्फी बेले के फूलों से ढक कर लेते गये और

उसे महाराज श्री के चरणों के समीप रख कर दण्डवत प्रणाम करके बैठ गये। सत्संग होता रहा और रात्रि आने पर सेठ जी घर चले गये और महाराज श्री भी उठ कर अपने विश्रामवाले कमरे में चले गये। प्रातःकाल जब महाराज श्री का ब्रह्मचारी सेवक उस बैठने के स्थान को झाड़ू से साफ कर रहा था, उस अशर्फी वाले दोने को भी यह समझ कर कि इसमें केवल फूल ही है झाड़ू से ठोकर देकर हटाने का प्रयत्न किया परन्तु जब वह दोना नहीं हटा तो उसे उठाकर देखा। मालूम पड़ा कि उसमें अशर्फियाँ हैं। उसने उन्हें ले जाकर महाराज श्री के समीप रख दीं। महाराज श्री को मालूम हो गया कि इसको लानेवाले वही सेठ जी ही हैं। आज्ञा दी कि यदि आज सायंकाल सेठ जी दर्शन के लिये आवें, तो उन्हें फाटक पर रोक देना और ऊपर हमारे पास दर्शन के लिये नहीं आने देना। रोज की भाँति सायंकाल जब सेठ जी दर्शन करने आये, तो ब्रह्मचारी जी ने उन्हें फाटक पर ही रोक दिया। सेठ जी दो-ढाई घण्टे फाटक पर बैठे रहे। इसके बाद आज्ञा हुई कि बुला लो सेठ जी को। सेठ जी के दर्शन प्रणाम करने के बाद महाराज श्री ने कहा,

> "ये अशर्फियाँ आपने यहाँ चढ़ाई हैं? जो इनकी इच्छा करता है, जो इन्हें आपसे माँगता है, उसे तो आप देते नहीं। हमारे पास क्यों रख गये? क्या मुझे किसी बेटे-बेटी का विवाह रचाना है?

"..........जाओ, ले जाओ, इन्हें उन लोगों को दो, जो इनके लिये लालायित हैं।"

ऐसा कह कर अशर्फियाँ लौटा दीं और कहा,—

"हमारे यहाँ धन नहीं, अपने दुर्गुण चढ़ाओ जिससे तुम्हारा कल्याण हो जाय। यहाँ धन की आवश्यकता नहीं।"

स्वच्छंद विचार थे। जिधर की इच्छा होती चल पड़ते। मार्ग या सड़क के सहारे ही नहीं चलते, अपितु सीधे ही खेत-बारी, ऊँचा-नीचा कूदते फाँदते सीधे चले जाते। पीछे से खेत बारी वाले लोग चिल्ला पड़ते,

"खेत से होकर क्यों जाते हो ? सीधे मार्ग से चलो"

उत्तर मिलता—"हम तो सदैव के कुमार्गी हैं, अर्थात् सांसारिक मार्ग का अनुसरण न करते हुये गृहस्थ व वानप्रस्थ आश्रमों के मार्ग से न जाकर सीधा मार्ग संन्यास का पकड़ कर ही विचर रहे हैं।"

एक बार महाराज श्री के पीछे कुछ अधिक कोलाहल सुनाई पड़ा। पीछे मुड़कर देखा कि कुछ लोग धलि में कुछ बीनते से बढ़े आ रहे हैं।" समीपवर्ती एक व्यक्ति से पूछा, "ये लोग क्या कर रहें हैं ?" उसने बताया, "पद-चिह्न देख कर महाराज श्री की चरण-धूलि उठा रहें हैं।" "कितने ही साधक तपस्वी अनुष्ठान करते हुये जंगलों में अनुमान से इन चरणों को ढूंढ़ते हुये विचरते थे। कितने भक्तगण इनके दर्शन के

लिये संकल्प लेकर देवी देवताओं के अनुष्ठान करते थे। इनके अंतर्यामित्व की ऐसी विचित्र घटनायें हैं कि जिनसे सिद्ध होता है अवश्यमेव उन यजमानों के संकल्प की पूर्ति होती थी। उनका अनुष्ठान सफल होता था और उन्हें अभीष्ट दर्शन प्राप्त होते थे। इसका रहस्य जानने के लिए श्री चरणों से उत्सुकता प्रकट करने पर यही उत्तर मिलता, "जैसी स्वच्छंद चित्तवृत्ति हो जाती है, उसी का अनुसर करके स्वच्छंदतापूर्वक नवीन दिशा में चल पड़ते हैं।" धन्य है भगवान् की महिमा।

एक बार मानिकपुर के पास विचरण करते हुये एक गांव में पहुंच गये। लोगों ने महाराज श्री के तेजस्वी स्वरूप का दर्शन किया और आकर्षित होकर उनके समीप आये। जलपान आदि कराकर सेवा की और कुछ समय तक सत्संग किया। महाराज श्री ने पूछा, "क्या भजन करने लायक कोई एकान्त स्थान आप लोग जानते है ?" लोगों ने बतलाया यहां से लगभग ५ मील दूर एक गुफा है, जो घनघोर जंगल में है। सिंह, व्याघ्रादि जंगली हिंसक जीव-जन्तु अधिकता से रहते हैं।" इस प्रसंग में उन्होंने गुफा की एक घटना भी सुनाई—कहा कि गाँव के जमींदार के लड़के को एक बार वैराग्य हुआ। उसने विचार किया कि जंगल की अमुक गुफा में जाकर भजन जप तप करेंगे। ऐसा ही निश्चय करके उसने अपने कर्मचारियों से कहा कि तुम लोग बन्दूक आदि लेकर हमारे साथ चलो और हमको गुफा में पहुंचा कर चले आना। इस प्रकार वह अपने सब साथियों के साथ गुफा में पहुँचा तब अपने साथियों को घर लौट जाने की आज्ञा दे दी और

स्वयं गुफा में रह गया। साथी लोग गुफा से कुछ दूर जाकर एक जंगली भाड़ी के नीचे में रात्रि में रह गये। रात्रि के समय गुफा की वन-योगिनियों ने किलकारी मार-मार कर गुफा की दीवालों पर थपेड़ी मारी और उस जमीन्दार के लड़के के गालों पर खूब तमाचे लगाये। सब लोग बाहर से रात भर गुफा के भयानक शब्द सुनते रहे। किन्तु भयवश किसी को गुफा में प्रवेश करने का साहस नहीं हुआ। प्रातः काल जब लोग गुफा में गये तो देखा कि जमींदार का लड़का बेहोश पड़ा है और उसके शरीर पर हथेलियों की रक्तिय छापें बनी है। यह देख कर लोग बेहोशी की हालत में उस लड़के को उठाकर घर ले आये।

वन-योगिनियों के ऐसे कृत्य सुन कर महाराज श्री ने विचार किया और कहा, "देख लिया जाय।" बिना किसी से कुछ कहे सुने उधर ही चल दिये। ५ मील कोई ज्यादा दूर नहीं था। दो धण्टे में पहुँच गये। देखा—सुन्दर रमणीक स्थान। एकान्त-प्रिय थे ही; एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

यह ऐसा घनघोर जंगल है, जहाँ दिन में भी लोग गिरोह बना कर सशस्त्र जाने में भी घबराते हैं, वहाँ महाराज श्री बैठ गए। रात हो गई। अंधकार छा गया। इसी स्थान में एक दूसरी घटना घटी। यहाँ जंगल में एक पुराना सिद्ध अघोरी रहता था। देखा कि जप-तप में निमग्न एक सिद्ध महात्मा यहाँ पधारे हैं और सोचा कि इनको अपना कुछ चमत्कार दिखा कर प्रभावित किया जाय। अचानक दिन के समान शुभ्र प्रकाश हो गया। एक दो फर्लांग की सीमा

के भीतर वनस्थलो जगमगा उठी। महाराज श्री ने ने यह देखकर अपने आसन के चारों ओर एक रेखा खीच दी और निश्चिंत बैठ गये। धीरे-धीरे वह प्रकाश बदल कर नीले रंग का सुन्दर प्रकाश हो गया। इस नीले प्रकाश में अनेक ऋषि महर्षि उधर-उधर जाते दिखलाई। राम-लक्ष्मण सीता की त्रिमूर्ति की मनोहर छवि वन-विहार करती हुई इधर उधर आती जाती दिखाई दी। मधुर मनोहर बालरूप में घनश्याम का भी दर्शन हुआ। लगभग आध घण्टे तक यह नाटक होता रहा। थोड़ी देर में धनघोर घटा छा गई। वर्षा होने लगी। ओले पड़ने लगे। हड्डियाँ तथा रक्त की भी वर्षा होने लगी। इस प्रकार की दुर्घटनायें होती रहीं। महाराज श्री मौन होकर स्वप्नवत सब दृश्य देखते रहे। परन्तु महाराज श्रो की रेखा के अन्दर कोई विक्षेप नहीं हुआ। इस प्रकार महाराज श्री की दृढ़ता को देख कर कि इतना उत्पात करने पर भो विचलित नहीं हुये। वह अघोरी सिद्ध इस प्रतीक्षा में बैठा रहा कि सम्भवतः उसकी सिद्धि देख कर महाराज श्री उसके समीप आएँ। वहाँ तो परम सिद्ध का आसन लगा था। वह कब डिगनेवाला था।

जब उसने देखा कि वे तो अपने आसन से नहीं डिगे तो अपनी माया द्वारा निर्मित एक शेर पर बैठ कर स्वयं आया और बोला, "आप कौन हैं और किस लिये यहाँ आये हुये हैं?" महाराज श्री ने देखा एक बड़ा ऊँचा आदमी जिसकी जटायें जमीन पर दो हाथ लटक रही हैं, भौंह के बाल भी बहुत बड़े-बड़े हैं, सामने खड़ा है। यह देख कर महाराज श्री ने हँस कर पूछा, "यह नाटक किसको दिखा रहे हो? उस

अघोरी महात्मा ने बड़ी नम्रता से प्रार्थनापूर्वक कहा, "यहाँ रहकर जो कुछ आप चाहते हों वह हम अभी पूरा कर सकते हैं। अपना परिचय तो दीजिये।" महाराज श्री ने उत्तर दिया, "जो अभिलाषा पूर्ति करने में समर्थ हो सकता है वह अवश्य जान सकता होगा कि हम कौन हैं और किस लिये यहाँ आये हैं?—हमें कुछ चाहिये नहीं, गुरुकृपा से सब पूर्ण है।"

जब उस ओर से विशेष आग्रह हुआ कि कुछ तो आप मांग ही लें, तो महाराज कहा "क्या आप हमारी प्रवंचना करने आये है ? ठगना चाहते हैं क्या ?" इस पर अघोरी बहु प्रसन्न हुआ और समझ गया कि ये स्वयं पूंजीवान हैं। अघोरी ने कहा, "क्षमा करें। मैंने बहुत उपद्रव किया। आज तक इतना उत्पात' करने पर कोई यहां टिक नहीं सका। २५० वर्ष हो गये इस जंगल में मुझे आये हुये, किन्तु कोई ऐसा पूँजीवान नहीं मिला। क्षमा किया जाय।" इतना कहते कहते किंचित मौन के पश्चात् बोला, "जब तक आप यहाँ चाहें रहें और मेरे योग्य जो भी सेवा हो बताएँ।" महाराज श्री ने उत्तर दिया कि हमें किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। यह तुम स्वयं जान सकते हो। भ्रमण करते हुये इधर आगये, स्वयं चले जायंगे। कुछ दिन निश्चिंतता से महाराज श्री वहाँ रहे। इस बीच वह सिद्ध अघोरी भी कभी-कभी आपके समीप आता रहा। किन्तु आपने विचार किया कि हमारे यहाँ रहने में इस अघोरी की स्वतंत्रता में बाधा पहुंचती होगी। अतः आपने स्थान परिवर्तन कर दिया और अन्यत्र चले गये।

घनघोर जंगल में भ्रमण करते हुये एक पगडंडी से जा रहे थे। उसी पगडंडी पर खड़ा हुआ एक सिंह दिखाई पड़ा।

परम योगी ध्याननिष्ठ महात्मा के समीप आने पर वैर भाव वाले हिंसक जीव जंतु भी अपने स्वभाव को त्याग देते हैं। यह बात यहाँ प्रत्यक्ष घटित हुई। महाराजश्री प्रसन्न मुद्रा में उसी पगडंडी पर आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। कुछ ही कदम पर सिंह को सामने खड़ा देखकर महाराज श्री के मुख से ये शब्द निकल पड़े "राजाओं का यह धर्म नहीं है कि किसी के रास्ते पर खड़े हों" इन शब्दों की झनकार सिंह के कानों में जाते ही, उसने अपनी पूंछ हिलाई, और रास्ते को छोड़कर एक तरफ धीरे से चल दिया। ठीक है जिस समय योगी यथार्थ अहिंसा के उच्चतम स्तर पर पहुँच जाता है, उस समय उसके समीप में आने वाले हिंसक जन्तु भी हिंसक स्वभाव त्याग कर उसके प्रभाव से अहिंसक बन जाते हैं। महाराज श्री अपनी जिस चाल से उस पगडंडी पर जा रहे थे उसी चाल से आगे बढ़ते गये और आगे चले गये।

थोड़ी दूर पर देखा एक विशाल बरगद का पेड़ है। उसी के बगल में पास ही अति नीची खाई है। खाई इतनी नीची है कि कोई भी बिना किसी सहारे के नीचे नहीं जा सकता। नीचे खाई से कुछ ही दूर पर जलस्रोत है। स्थान चारों ओर से घने वृक्षों से घिरा हुआ है। समीप जाने पर देखा कि बरगद की जटायें नीचे तक लटक रही हैं। देखा कि यहाँ परम एकान्त और रमणीक स्थान है। बरगद की जटायें पकड़ कर आप नीचे उतर गये। वहाँ एक सुन्दर गुफा भी दृष्टिगोचर हुई। घनघोर जंगल में जलस्रोत के समीप सुन्दर शीतल रमणीक गुफा देखकर विचार हुआ कि यहीं रहकर कुछ दिन योगाभ्यास किया जाय। यह स्थान इतने

सघन वृक्षों के बीच है कि सूर्य का प्रकाश ६-६ महीने नहीं प्रवेश कर पाता। महाराज श्री आनन्द से यहीं निवास करने लगे। कंदमूल फल से जीविका निर्वाह होता और सदैव अहर्निश परमात्म-चिंतन में संलग्न रहते। लकड़ी काटने के निमित्त कभी-कभी यदि कोई ग्रामीण आ जाते तो उनके द्वारा कच्चा चना मंगा कर रख लेते और एक दो मुट्ठी खाकर अपनी जठराग्नि शान्त कर लेते। इस प्रकार आपको इस स्थान में निवास करते कुछ समय व्यतीत हो गये।

उस समय अंग्रेजों का राज्य था। अंग्रेज लोग कभी-कभी उधर शिकार खेलने आ जाया करते थे। एकान्त स्थान में जलस्रोत होने के कारण एक अंग्रेज शिकारी ने देखा कि यहाँ शेर का शिकार सफलता पूर्वक अच्छा हो सकता है। उसकी आज्ञा पाते ही ग्रामीण लोग एक भैंसा ले आये और उसी स्रोत के पास ले जाकर बाँस की कमची (रस्सी) से बाँध दिया और सब चले गये। दूर एक निश्चित स्थान पर अंग्रेज शिकारी बैठ गया। सूर्यास्त होने के बाद से वह भैंसा चिल्लाने लगा। भैंसे की चिल्लाहट का शब्द कई घण्टे तक महाराज श्री को सुनाई पड़ता रहा। अधिक रात बीत जाने पर भी जब वह चिल्लाहट बन्द नहीं हुई, तो महाराज श्री ने विचार किया कि समीप में ही किसी प्राणी को अत्यन्त कष्ट है। उस कष्ट का निवारण करना चाहिये। आप उस भैंसे के समीप गये और उस बाँस की रस्सी के नीचे एक पत्थर रख कर दूसरे पत्थर को जोरों से उस रस्सी को काट दिया। भैंसा स्वतंत्र हो गया और भाग गया। इधर रस्सी काट कर वे अपनी गुफा में आकर फिर ध्यानमग्न हो गये।

रात्रिभर शिकारी लोग अपने शिकार की प्रतीक्षा में बैठे रहे। प्रातःकाल उन लोगों को मालूम पड़ा कि भैंसे की रस्सी को किसी ने रात्रि में काट दिया था, तब तो उस अंग्रेज को बहुत क्रोध आया। आवेश में वह अनाप-शनाप बकने लगा। ग्रामीण लोगों ने कहा, "यहाँ एक महात्मा रहते हैं। आप कोई अपशब्द यहाँ न कहें।" शिकारी के साथ उसकी मेम भी थी। अंग्रेजी राज्य था। उस समय सफेद चमड़ीवाले साहबलोग मदान्ध थे। उस मेम ने कहा, "महात्मा हमारा क्या कर सकता है? क्या हमारा रास्ता बन्द कर देगा? हम लोग इस जंगल के मालिक हैं, अधिकारी हैं, हमारा राज्य है।" इस प्रकार के अभिमान से भरे शब्दों के निकलने के बाद, उस मेम का मलमूत्र बंद हो गया। उसका पेट फूलने लगा, कष्ट बढ़ गया। उपचार की सम्भावना कठिन थी। बहुत घबड़ाई। ग्रामीणों ने कहा "घनघोर जंगल में जो ये महात्मा भजन-तप करते हैं, उनके प्रति अपराध हो गया है, ऐसा मालूम पड़ता है। नहीं तो इस प्रकार सहसा कष्ट नहीं होना चाहिये था। उस अंग्रेज ने कहा, "हो न हो, यही कारण हो; तब तो पता लगाओ उन महात्मा का। उनसे मिला जाय।" सब लोग महाराज श्री का पता लगाते हुये वहाँ पहुँच गये और देखा कि एक महात्मा ध्यानावस्थित बैठे हुये हैं। दूर से ही हाथ जोड़ कर सब वृतांत कह दिया और कष्ट दूर होने की प्रार्थता भी की। नेत्र खोलकर महाराज श्री ने देखा कि सामने एक अंग्रेज और उसकी महिला तथा कुछ ग्रामीण खड़े हैं और प्रार्थना कर रहे हैं। श्री महाराज जी ने उनकी प्रार्थना सुन कर कहा, "इतना बड़ा जंगल पड़ा है, आप लोग मेरे नेत्रों के सामने ही

हिंसा करने के लिये उद्यत हो गये। लगभग १२ बजे अर्द्ध रात्रि में मुझे वहाँ जाकर उस भैंसे को छुड़ाना पड़ा।" तब तो उस अंग्रेज साहब ने कहा कि "मुझे यह कदापि ज्ञान नहीं था कि कोई इतना प्रभावशाली महात्मा इस घनघोर जंगल में तप कर रहे हैं। क्षमा किया जाय। अब कभी इस तरफ आपके समीप शिकार खेलने नहीं आऊँगा।" महाराज श्री ने कहा, "अच्छा, अब आप लोग जाइये।" वे सब लोग वहाँ से चले गये और तुरन्त ही उस अंग्रेज महिला का कष्ट दूर हो गया। इसके बाद वह अंग्रेज फिर कभी भी उस तरफ शिकार खेलने नहीं गया।

लगभग ६ महीने बाद उस गुफा से महाराज श्री निकले और भ्रमण करते हुए पास के किसी गाँव में पहुँच गये। सिद्ध महात्मा होने की ख्याति उधर दूर तक फैल चुकी थी। लोगों की बड़ी श्रद्धा हुई और दर्शन के लिये उमड़ पड़े। सत्संग होता रहा। कभी-कभी प्रसंग आने पर महाराज श्री उस गुफा के सौन्दर्य और वहाँ अपने एकान्तिक जीवन का संक्षेप में वर्णन कर दिया करते थे। आप यह कहा करते थे कि अपने लिये भोग की क्या चिंता—वह तो स्वयं ही भोक्ता को ढूँढ़ता हुआ आ जाता है। एक समय रींवा जंगल की तरफ किसी गाँव में महाराज श्री रुके हुये थे। श्री कुबेरदत्त ओझा, जो उनके अनन्य भक्त थे, दर्शन के लिये ढूँढ़ते हुये वहाँ पहुँच गये। सायंकाल का समय था। महाराज श्री ने अपना दंड-कमंडलु उठाया और चल दिये जंगल की ओर। कुबेरदत्त भी पीछे-पीछे हो लिये। लगभग दो मील जंगल में चले गये। कुबेरदत्त के मन में यह बात आई कि अब हम लोग जंगल में यहाँ दूर

श्रा गये हैं लौटना तो होगा नहीं, मालूम पड़ता है श्राज रात्रि में भूखे ही रहना पड़ेगा । थोड़ी देर बाद महाराज श्री एक पेड़ के नीचे रुक गये । कुबेरदत्त से कहा कि थोड़ी देर श्राप यहीं बैठिये; मैं उधर शौच को जाता हूँ । कुबेरदत्त एकाकी उस घन-घोर जंगल में बैठे थे कि इतने में एक पुरुष उनके पास श्राया । वह एक हंडी में कुछ सामान लिये था । उसने कुबेरदत्त से कहा, "इसे रख लो, श्रपने काम में लाना" । कुबेरदत्त ने कहा, "श्राप कौन हैं ? कहाँ से श्रौर क्या लाये हैं ?" उसने उत्तर दिया, "इसे श्राप रख लीजिये श्रौर महाराज श्री से बतला देना, बस इतना ही प्रयोजन है ।" ऐसा कह कर वह चला गया । जब महाराज श्री श्राये, तो कुबेरदत्त ने सारा वृत्तांत कह सुनाया । महाराज श्री ने कहा, "ठीक है, देखो तो उसमें क्या है ?" देखा गया तो मालूम पड़ा कि उसमें हंडी भर मलाई थी । महाराज श्री ने कहा, "इसे काम में ले लो, खाश्रो, पियो, परन्तु ध्यान रहे कि इस प्रकार एकान्त में जब कभी कोई सामग्री लावे, तो उससे श्रधिक प्रश्न नहीं करना चाहिये । यह नहीं पूछना चाहिये कि कौन हो, कहाँ से लाये हो श्रादि-श्रादि ।"

इसी प्रकार स्वच्छंद विचरण-काल में श्रनेकानेक घटनाएँ घटती रहीं । एक बार नीवा घाट (प्रयाग) की तरफ एक गाँव में पहुँच गये । महाराज श्री के साथ सेवा में एक ब्रह्मचारी भी था । एकान्त स्थान था । श्रन्य गाँव वहाँ से मीलों दूर थे । थोड़ी रात्रि बीत चुकी थी । इतने में एक मनुष्य कुछ श्रन्न श्रादि भोजन सामग्री लेकर श्राया । उस समय महाराज श्री वहाँ मौजूद थे । ब्रह्मचारी ने सूचना दी कि महाराज, एक मनुष्य

कुछ खाने पीने की सामग्री लेकर आया है। महाराज श्री ने कहा, "बुलाओ उस मनुष्य को हमारे समीप।" आने पर महाराज श्री ने स्वयं उससे पूछा, "यह सामग्री किसने भेजी है ? उसने उत्तर दिया, अमुक मनुष्य जो अमुक गाँव में रहता है, उसने।" आज्ञा हुई—ब्रह्मचारी, देखो, जो-जो यह बोलते हैं उसे नोट कर लो। ब्रह्मचारी जी ने उस सामग्री भेजनेवाले का नाम, ग्राम आदि नोट कर लिया। वह मनुष्य सारी सामग्री वहीं रख कर चला गया। दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज श्री ने आज्ञा दी कि जाओ उस सामग्री भेजनेवाले का पता लगाओ, और उससे पूछो कि उसने वह सामग्री कल भेजी थी। ब्रह्मचारी जी ने पता लगाया तो मालूम पड़ा कि अमुक ग्राम में उस नाम का व्यक्ति रहता तो है। परन्तु उसने कोई सामग्री महाराज श्री के यहाँ नहीं भेजी। उस प्रकार से अनेकानेक घटनायें नित्यशः होती रहीं।

आपका निवास अधिकतर विन्ध्यगिरि और अमरकंटक के घनघोर वन-पर्वतों की एकाकी गुफाओं और कंदराओं में होता रहा। वह जन-संसर्ग से सदा असंग थे। और उनके संगी थे वनचर, व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक जंतु और कोल-भिल्ल आदि मानव एवं पशु। किन्तु ये वनचर प्राणी उस तेजोमय महात्मा को सदैव अपनी कंदराओं में न छिपाये रख सके। यहाँ-वहाँ कभी-कभी संसार की दृष्टि में आने लगे। मुग्ध होकर संसार ने देखा, समझा और कसौटी पर कसा। विशुद्ध तत्व थे वह। जिस कसौटी पर चढ़ाये गये, वही आभावान हो गई। जिसको उनका सम्पर्क मिला, वही चमक उठा। सब प्रकार से पूर्ण थे वह। उन्हें कुछ आवश्यकता न थी। ऐसी

कोई वस्तु न थी जो उन्हें प्राप्त न थी। जिससे सब कुछ जाना जाता है, आपको वह ज्ञान हो चुका था। सब लोग अपनी-अपनी दृष्टि से उन्हें देखते थे। अज्ञानी संसारियों की दृष्टि में वे एक साधारण साधु, साधुओं की दृष्टि में एक ज्ञानी महात्मा और महात्माओं की दृष्टि में एक सिद्ध पुरुष थे।

———

सातवाँ अध्याय

ज्योतिष्पीठोद्धारक आचार्य का अभिषेक

इस समय भारत-धर्म-महामंडल के बड़े-बड़े अधिवेशनों में जगद्गुरु भगवान् आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित उत्तर भारत के धर्मपीठ श्री ज्योतिर्मठ के पुनरुद्धार की चर्चा चलने लगी थी। सन् १९०८ ई० में कई नरेशों के अनुरोध हुये, जिन्होंने इस विषय के प्रस्ताव का पूर्ण रूप से समर्थन किया। फलतः विशिष्ट विद्वानों ने निश्चय किया कि ज्योतिर्मठ का पुनरुद्धार यथाशीघ्र होना चाहिये। प्रश्न उपस्थित हुआ कि ज्योतिर्मठ के पुनरुद्धार करने में समर्थ एवं पर्याप्त योग्यता सम्पन्न जगद्गुरु शंकराचार्य कौन हो? भारत-धर्म-महामंडल के विशिष्ट कार्यकर्तागण तथा उत्तर भारत के प्रसिद्ध विद्वान् शंकराचार्य पद के योग्य महात्मा की खोज में लग गये। इस पद के लिये वही व्यक्ति सबकी दृष्टि में उचित हो सकता था जिसने विशुद्ध एवं प्रतिष्ठित ब्राह्मण वंश में जन्म पाया हो तथा श्री जगद्गुरु शंकराचार्य के स्थापित चार मठों में से किसी मंठ की शिष्य-परम्परा से सम्बन्धित हो। विधिवत् संन्यास दीक्षा प्राप्त दण्डी-स्वामी हो, विद्वान्, चरित्रवान्, विवेकशील तथा ज्ञानवृद्ध हो, वेदादि शास्त्र-प्रमाण को सर्वोपरि मान्यता देता हो, वर्णाश्रम मर्यादा की सदैव रक्षा करनेवाला हो, अद्वैत-सिद्धान्त का पोषक एवं अध्यात्म-विद्या का उत्तम प्रचारक हो, इष्ट पर निष्ठा रखनेवाला हो तथा योग आदि की

सिद्धियों से सम्पन्न हो। ऐसे गुरा-सम्पन्न महात्मा की खोज थी क्योंकि अधिक:काल से उच्छिन्न धर्मपीठ का उद्धार करके जनता में धर्माचार्य पीठ को प्रतिष्ठित कर समाज को धर्मोन्मुख बनाना एक महान् कार्य था, जो किसी विशिष्ट दैवीशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति के द्वारा ही पूर्ण किया जा सकता था।

सौभाग्य से विद्वानों की दृष्टि उपर्युक्त गुरा-सम्पन्न केवल आप पर ही पड़ी। किंतु आपके परम त्याग वैराग्यमय तेजपूर्ण निस्पृहता और एकान्तिक जीवन को देखकर किसी का साहस नहीं होता था कि जाकर पीठोद्धार का प्रस्ताव करें। जिसका सिद्धांत हो कि "जन सम्पर्क को सर्प के समान सदैव त्यागना चाहिये" जिसके ऐसे उद्गार हों कि "कोई शुकदेव के समान त्यागी हो, वृहस्पति के समान विद्वान् हो, और कुबेर के समान धनवान् हो तो भी हमें उसकी कोई आवश्यकता नहीं", तो इतने असंग व्यक्ति से पीठ-संचालन का प्रस्ताव करना कहाँ तक उचित अथवा न्यायसंगत हो सकता है? पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। किन्तु धर्मपीठ का उद्धार होना था। महाराज श्री भी इधर नगरों में कभी-कभी आने लगे थे और चातुर्मास्य-व्रत करने लगे थे। धीरे-धीरे प्रभावशाली धार्मिक पुरुषों द्वारा पीठोद्धार का प्रस्ताव भो होने लगा। सब लोगों के प्रयत्न करते-करते, बुद्धिमानी से कहते-कहाते महाराज श्री के अंतःकरण में पीठोद्धार के लिये कुछ स्थान बन ही गया। किन्तु फिर भी समय आने पर आपका विरक्त अन्तःकरण एक बार फिर चौंक उठा और अपने पूर्व-रूप पर आ गया।

अभिषेक की पूर्ण तैयारी हो गयी थी। समय निश्चित्

हो चुका था और इसीलिये काशी में सनातन-धर्म-सम्मेलन के नवम महाधिवेशन की पूरी-पूरी तैयारी कर ली गई थी। किन्तु अभिषेक की तिथि आने के दो दिन पहिले महाराज श्री जिनका अभिषेक होना था अंतर्ध्यान हो गये और किसी अज्ञात स्थान को चले गये। यह सोचकर कि आपकी अनुपस्थिति में किसी दूसरे महात्मा का अभिषेक हो जायगा और उसके अनन्तर फिर प्रकट हो जायँगे। महाराज श्री आश्रम से न जाने कहाँ चले गये। वे कब गये और कैसे गये—यह कोई नहीं जानता। वातावरण गम्भीर हो उठा, क्योंकि परसों ही अभिषेक होने को है। वह दिन बहुत अधिक प्रयत्न व परिश्रम के बाद आया था। इस घटना से धार्मिक जनता में क्षोभ व्याप्त हो गया। कार्यकर्ताओं के मन में नाना प्रकार के तर्क-वितर्क उठने लगे। कुछ दूसरे दण्डी-महात्माओं के लिये भी अन्तरंग रूप से प्रस्ताव उठने लगे। किन्तु भारत-धर्म-महामण्डल के वयोवृद्ध महात्मा श्री स्वामी ज्ञानानंद जी महाराज ने विद्वानों को धैर्य से कार्य करने का परामर्श दिया और कहा कि "धर्म पीठोद्धार का यह महान् कार्य है; इस प्रकार के निस्पृह, त्यागी और सुयोग्य महात्मा ही यह भार सम्भाल सकेंगे। अन्य किसी का अभिषेक कर भी दिया जाय, तो उसमें उतनी योग्यता न होने से पीठ की दैवी-शक्ति का विकास नहीं हो सकेगा। एक सौ पैंसठ वर्षों से सुप्त पीठ की शक्ति को जाग्रत करना है वह सत्पात्र में ही विकास को प्राप्त होगी। इस सम्बन्ध में शीघ्रता करना लोक-कल्याण की दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होगा।" सर्वत्र तार पत्र आदि भेजकर अधिवेशन अनिश्चित समय के लिये स्थगित कर दिया गया और महाराज श्री की खोज होने लगी।

किसी को कहीं पता नहीं लगा। किन्तु भावी बलवान होती है। महाराज श्री जहाँ थे, वहीं उनके मन में यह भाव उठने लगा कि "अखिल भारतीय सम्मेलन होना निश्चित् था, दूर-दूर के लोग आनेवाले थे, सब आ गये होंगे और किसी न किसी को पीठ पर बैठा ही दिया गया होगा।" इस प्रकार सोच-विचार कर निश्चित होकर लगभग २१ दिन पश्चात् विचरते हुये रात्रि में काशी पहुँचे। काशी के विद्वान् सतर्क और उत्सुक थे ही। तुरन्त कानोकान खबर फैल गई कि महाराज श्री आ गये। एक घण्टा के अन्दर ही ११ बजे रात्रि में विशिष्ट विद्वानों का दल आश्रम में पहुँचा। करवद्ध होकर सब ने प्रार्थना की, "भगवन्, हम सब लोगों के परम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय भगवान् आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित उत्तर भारत का धर्मपीठ ज्योतिर्मठ बहुत समय से उच्छिन्न एवं आचार्यहीन है। हम लोग धर्मगुरु के बिना अनाथ से हो रहे हैं। इसका पुनरुद्धार आपके द्वारा ही हो सकता है। साधारण व्यक्ति से इस गुरुतम कार्य का होना असम्भव है। आप जन्म और कर्म, त्याग और तप के द्वारा बाल्यावस्था से ही विशिष्ट साधुसमाज में एवं समस्त राजा तथा प्रजा में शंकराचार्यवत् ही सम्मानित हैं। आदि गुरु शंकराचार्य के प्रति आप की श्रद्धा भी है ही, क्योंकि आप उसी आचार्य-परम्परा के दण्डी-स्वामी हैं। इसलिये अब हमारी प्रार्थना अवश्य स्वीकार हो।" पंडितों की इस प्रार्थना पर श्रीचरण मौन रह गये। "मौनं सम्मति लक्षणम्" मानकर यथाशीघ्र अखिल-भारतोय-सनातन धर्म-महा-सम्मेलन अधिवेशन का आयोजन हुआ। अभिषेक की पूर्ण तैयारियाँ तो पहिले से थीं ही; "शुभस्य शीघ्रम्"

सब को इष्ट था।

श्री भारत-धर्म-महामण्डल के यज्ञमण्डप में सहस्र चण्डी महायज्ञ हो रहा था। कुछ मनीषियों की सम्मति हुई कि भगवती की अराधना के बीच महायज्ञ मण्डप में आचार्य का अभिषेक किया जाय। किन्तु सुयोग्य विद्वानों ने कहा, "उनका तो हमलोग एक प्रकार से बलात् अभिषेक कर रहे हैं। उन्हें यह पद स्वीकार करने की तनिक भी इच्छा नहीं है। अभिषेक कराने के लिये वे कहीं जायँगे, ऐसी आशा नहीं है। यदि वे इसके लिये लालायित होते तब तो जहाँ हम लोग चाहते, चले आते। किन्तु अभिषेक के नाम से एक बार भाग ही चुके हैं, यह सब को विदित ही है। इसलिये अभिषेक के विधान की पूर्ति तो जहाँ वे हैं, वहीं चलकर कर देनी चाहिये। फिर अभिषेक के बाद उन्हें आचार्योचित गौरव के साथ सार्वजनिक सभा में (अखिल-भारतीय-सनातन-धर्म-सम्मेलन के पण्डाल में) आदर पूर्वक लाया जाय और वहीं आचार्यत्वेन पूजन किया जाय और पीठोद्धार की घोषणा की जाय" दूरदर्शी विद्वानों के इस विचार को सबने स्वीकार किया और तदनुसार कार्यक्रम बना।

अखिल-भारतीय-सनातन-धर्म-सम्मेलन में आये हुये विभिन्न प्रान्तों के विद्वान् तथा विभिन्न धार्मिक संस्थाओं के गण्यमान्य प्रतिनिधिजन काशी-निवासी विद्वन्मण्डली के सहित अभिषेकोपयोगी समस्त सामग्री लिये हुये प्रातःकाल ही श्री चरण के आश्रम "ब्रह्मनिवास, सिद्धिगिरिबाग" में आ गये। स्मरण रहे कि शंकराचार्य के पद पर आसीन होने के पहिले ही सन् १९३६ ई० में महाराज श्री ने अपने पूज्य श्री गुरुदेव की पुण्य

स्मृति में "श्री ब्रह्मविद्या-निकेतन" तथा श्री ब्रह्मानन्देश्वर महादेव जी" का मंदिर, छोटी गैबी, वाराणसी में निर्मित करवाया था। इस आश्रम और मन्दिर आदि के सुचारु रूप से संचालन के निमित्त "श्री ब्रह्म निवास" के नाम से एक बड़ा आश्रम "सिद्धि गिरि बाग," वाराणसी में बनवाया था और बहादुरगंज, प्रयाग के दो अन्य भवन भी इससे संबद्ध कर दिये गए थे और इस सम्पत्ति की रक्षा व देखरेख के लिये आपने एक ट्रस्ट "श्री १००८ स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ट्रस्ट" भी स्थापित किया था, जिसका उल्लेख महाराज श्री ने अपनी अन्तिम वसीयत में किया है।

भारत-धर्म-महामण्डल के संस्थापक वयोवृद्ध पूज्य स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज भी अपने चिर-अभिलषित पीठोद्धार कार्य को अपने समक्ष सुसम्पन्न कराने की इच्छा से सिद्धिगिरिबाग में पधारे। उत्तराम्नाय धर्म पीठोद्धार के महा संकल्प से श्रीचरण का षोडशोपचार पूजा होकर लगभग १० बजे अभिषेक-कृत्य पूर्ण हुआ। अपराह्न में महाराज श्री की सवारी बड़े समारोह के साथ ठीक समय पर अधिवेशन के पाण्डाल में लाई गई। जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य की गम्भीर जयध्वनि से दशों दिशायें गूँज उठीं। वैदिक विद्वानों के चारों वेदों की मन्त्रध्वनि से गगनमण्डल प्रतिध्वनित हो उठा। काशी के विशिष्ट वैदिक कर्मकांडी विद्वानों द्वारा अभिषेचन कृत्य सम्पादित होते ही, महाराजाधिराज श्री दरभंगा नरेश ने उत्तर भारत के धर्माचार्य श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य के महाभिषेचन एवं धर्मपीठाधिरोहण की घोषणा की। भगवान् शंकराचार्य की बारम्बार जयध्वनि

करती हुई सम्पूर्ण जनता ने श्री जगद्गुरु शंकराचार्य महाराज का अभिवादन किया। इस प्रकार १६५ वर्षों से रिक्त उत्तराम्नाय के धर्म सिंहासन पर चैत्र शुक्ल ४, विक्रम सम्वत् १९९८, तदनुसार १ अप्रैल १९४१ ई० को महाराज श्री का अति सुयोग्य धर्माचार्य भगवत्पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य जी महाराज का पदार्पण हुआ।

देश-विदेश में सर्वत्र पत्र-पत्रिकाओं द्वारा ज्योतिष्पीठोद्धार का समाचार फैल गया। चारों ओर सनातन धर्म-संस्थाओं ने पीठोद्धार के उपलक्ष में उत्सव मनाये और आचार्य-चरणों में अभिनन्दन आदि भेजते हुये अपने कर्तव्यपालन तथा आचार्याज्ञापालन का वचन दिया। उत्तर भारत में स्वभावतः धार्मिक जाग्रति की अपूर्व लहर दिखाई पड़ने लगी और चारों ओर से आचार्य-चरण का आह्वान होने लगा।

इस समय, आचार्य श्री के सम्मुख पीठोद्धार के नाते मुख्य दो कार्य थे :—

(१) पीठस्थान में मठ, मन्दिर का नव निर्माण करना,

(२) उत्तर भारत में धर्म-प्रचार करके जनता को वैदिक पथ पर लाते हुये पीठ की मर्यादा व आदर्शपूर्ण गौरव को पुनः स्थापित करना।

इन दोनो कार्यों को आपको एक साथ प्रारम्भ करना था। काशी के विद्वन्मण्डल के कुछ लोगों ने महाराज श्री से प्रार्थना की कि पीठोद्धार होने के लिये समस्त कार्य सुचारु रूप से करने हैं और उसके लिये द्रव्य की नितान्त आवश्यकता है। अतएव बम्बई, कलकत्ता आदि सम्पन्न नगरों में धर्म-प्रचार

के लिए कुछ ऐसे कार्यक्रम बनाये जायँ, जिससे धार्मिक जाग्रति हो और पीठोद्धार के लिये द्रव्य भी संचय हो। महाराज श्री ने उन विद्वानों को इस प्रकार उत्तर दिया—

"धर्म-सिंहासन पर अब तो आप लोगों ने हमें बैठा ही दिया है और तत्सम्बन्धी सभी कार्यभार भी सौंप दिया है। इसलिये अब आप लोग निश्चिन्त बैठें। ज्योतिष्पीठोद्धार का उत्तर-दायित्व अब हमारे ऊपर है और वह हो जायगा।"

उसके बाद सर्व प्रथम आपने दक्षिण की यात्रा की। दो-चार दिन कटनी में रहकर जबलपुर पधारे। बलदेव बाग में आपने निवास किया। श्रद्धालु भक्तों का ताँता लग गया। अधिकाधिक लोग सम्पर्क में आने लगे। अपार जन-समूह दर्शन के लिये दौड़ पड़ा। नित्य प्रति उपदेश होने लगे। इस समय मध्य प्रदेश प्रान्त, जिला खंडवा, बुढ़ानपुर में महारुद्र याग हुआ। आपका आवाहन हुआ। वहाँ गये। उस प्रान्त में यह एक ऐतिहासिक अनुष्ठान एवं धार्मिक समारोह था। लाखों की संख्या में जनता एकत्र हुई। बहुत बड़ा आयोजन हुआ। महाराज श्री ने इस समारोह की अध्यक्षता की। दर्शनार्थी इतनी अधिक संख्या में एकत्र हुये कि आपका दर्शन लोगों को दुर्लभ होने लगा। दर्शन सुलभ बनाने के लिये तीन तख्त एक दूसरे के ऊपर रखे गए। उस पर आपका आसन लगाया गया। इस मंच पर से आपके सदुपदेश हुये और जनता कृत-कृत्य हुई।

आठवाँ अध्याय

धर्म-प्रचार

इस प्रकार धार्मिक यात्रा में भ्रमण करते हुये आप फिर जबलपुर आयें और कुछ दिनों तक वहाँ निवास किया। जबलपुर -प्रवास के पश्चात्, शीघ्र ही जनवरी १६४२, सम्वत् १९९८ का लोक-प्रसिद्ध प्रयाग का महान् कुम्भ पर्व आ गया। सम्पूर्ण भारतवर्ष के योगी, यती, सन्त, महन्त, राजा, महाराजा, मण्ड-लेश्वर एवं समस्त धर्मपरायण विद्वान् और प्रजावर्ग तथा उनके विभिन्न सम्प्रदाय और संस्थायें दशनाम संन्यासियों के अखाड़े आदि वहाँ उपस्थित थे। कुम्भ के ऐतिहासिक एवं धार्मिक महान् पर्व के अवसर पर सम्पूर्ण भारतवर्ष के साधु-समाज तथा धार्मिक जनता का नेतृत्व करने के लिये आप भी प्रयाग पधारे। आचार्य-चरणों के दर्शन करने तथा अभिनन्दन आदि करने के लिये उपस्थित साधु समाज के अग्रगण्य तथा दशनामी संन्यासियों के अखाड़ों के महंत आपके स्थान पर आये और उन्होंने प्रार्थना की, "प्रभो, हम आपकी सेना हैं। योग्य आज्ञा प्रदान की जाय, हमारी सेवा स्वीकार की जाय।" उत्तर में श्री भगवान् शंकराचार्य जी ने आदेश दिया, "आप लोग अपने अपने गुरूपदिष्ट विधानों के अनुसार योगसाधन तथा इष्ट की सिद्धि में लगे रहें, त्याग और तप के द्वारा शक्ति को बढ़ावें, अनुशासन एवं संगठन का दृढ़तापूर्वक ध्यान रखें, समय पर उचित आदेश दिया जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि

आप लोग जगद्गुरु शंकराचार्य की धर्मपीठ की अध्यात्मशक्ति सम्पन्न विजयिनी सेना हैं। अपने उत्तराम्नाय के ज्योतिर्मठ की मान-मर्यादा का ध्यान आप लोगों को सदैव रखना चाहिये।" तदनंतर आये हुये सभी मंडलेश्वर व साधु समाज द्वारा आयोजित आपकी अभूतपूर्व शोभायात्रा निकाली गई। सम्पूर्ण भारत के महंत, मण्डलेश्वरों तथा धार्मिक राजा-प्रजा द्वारा आपका यहाँ सर्वात्मना स्वागत किया गया और त्रिवेणी तीर्थ पर पर्व का महास्नान सर्वप्रथम आपका ही हुआ।

महाराज श्री ने ज्योतिर्मठ के पुनरुद्धार के लिये ही इस कार्यभार को सम्भाला था। इसलिये जगद्गुरु शंकराचार्य पद पर होते हुए भी आपके अतीतकालीन त्याग और वैराग्य-वृत्ति में कोई अन्तर नहीं आया। आपकी कठोर आज्ञा थी, "इस धर्म-सिंहासन के आगे धन का चढ़ावा नहीं, मन का चढ़ावा होना चाहिये और अपने प्रिय दोषों को, जिन्हें आप छिपाये रखते हैं और कभी छोड़ना नहीं चाहते, उन्हीं को, यहाँ चढ़ाइये। इसी से आप लोगों का कल्याण होगा। मन को जब आप धर्म के लिये अर्पण कर देंगे, फिर आप लोगों का पवित्र जीवन परम शान्ति की ओर अग्रसर होता जायगा।"

महाराज श्री के दर्शन अब जन साधारण को सुलभता से प्राप्त होने लगे। ऐसा देखकर एक विरक्त महात्मा ने कहा, "भगवन्, यदि हम लोग जानते कि ये दर्शन इतने सस्ते हो जायँगे तो कुछ दिन और रुक जाते, जंगलों में इनकी खोज में अनुष्ठान करते हुये मारे-मारे न भटकते।" कितना रहस्य है विरक्त के इन शब्दों में। उसी से स्पष्ट होता है कि कितना दुर्गम, दुष्प्राप्य और पूर्ण जीवन रहा है घनघोर जंगलों में

आपका। अपने त्यागमय एकाकी जीवन की झांकी कभी-कभी महाराज श्री स्वयं ही भक्तों के सामने बताने लगते—वे कहा करते, "कौन जानता था कि एक दिन धर्म सिंहासनारूढ़ होने की आवश्यकता पड़ेगी और अपना स्वच्छंद जीवन बन्धन में बँध जायगा ?" उस समय एक गेरुआ अचला होता, उसी की कभी सिर पर पगड़ी बँधी होती और वही कभी कटि में लिपटा हुआ होता। एक छोटे से चौरस पत्थर को तवा बनाकर आटा गूँथ कर जब उस पर रोटी की सेंकाई करते और वह पत्थर आग की गर्मी से चटाचट की आवाज़ें करने लगता तो हृदय अपने स्वच्छंद जीवन की हिलकोरों में आनन्द मनाने लगता। इस प्रकार की दशा देख कर कोई कहता कि परमहंस है और कोई अवधूत समझता। परन्तु नहीं, वह तो जीवन्मुक्ति के साक्षात् स्वरूप थे और अंतरतम में जीवन्मुक्ति का अपार आनन्द ले रहे थे।

प्रयाग कुम्भ के बाद महाराज श्री काशी पधारे। कुछ दिनों तक विश्राम किया। धर्म-प्रचार-यात्रा के निमित्त फिर प्रस्थान किया। दूसरी बार जबलपुर की यात्रा हुई और उसी पुराने स्थान, बलदेव बाग में निवास किया। भक्तों ने जबलपुर में ही चातुर्मास्य-व्रत करने की प्रार्थना की। आपने जबलपुर में दो चातुर्मास्य-व्रत लगातार किये—एक रैन बसेरा "गोल बाजार में और दूसरा "सेठ राधाकृष्ण की कोठी" गंजीपुरा में। इसी कालावधि में शंकर दिग्विजय के अनुसार आचार्योचित् पीठ की सामग्री स्वर्ण-रजत सिंहासन, पालकी, चमर, छत्र, दण्ड आदि निर्मित हुये। ज्योतिष्पीठ-भवन-निर्माण-कार्य भी इसी समय हुआ।

पीठ को उच्छिन्न हुये अधिक समय व्यतीत हो जाने के कारण उत्तराखंड-स्थित भगवान् आदि शंकराचार्य की लीला-भूमि जो लगभग ४ बीघा थी, कुछ तो गवर्नमेण्ट के अधिकार में चली गई थी और कुछ वहाँ के कृषक लोग अपने अधिकार में कर लिये थे। इस प्रकार से छिन्न-भिन्न हुई ज्योतिष्पीठ भूमि को भारत-धर्म-महामंडल ने अपने अथक प्रयास से और के डिप्टी कमिश्नर सर जेम्स क्ले की सहायता से प्राप्त कर वहाँ ली थी और अभिषेक हो जाने के बाद उसके उद्धार के निमित्त महाराज श्री को अर्पण कर दिया था। महाराज श्री ने इसी समय में अपने सुयोग्य शिष्यों द्वारा उक्त भूमि में पहले स्थानीय विशेष चिह्नों द्वारा पीठस्थान निश्चित् कराया तब ज्योतिष्पीठ-भवन-निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया। उन दिनों सुगमता एवं शीघ्रता से सामग्री अथवा धन भेजने की सुविधा डाक के अतिरिक्त अन्य नहीं थी। अतएव सभी आवश्यक सामग्री जो पर्वतीय प्रदेश में उपलब्ध नहीं हो सकती थी जैसे रंग, कीले, चटखनी आदि-आदि, पोस्ट पारसल द्वारा और हजारों रुपये पोस्टल बीमा द्वारा साप्ताहिक ज्योतिर्मठ को भेजवाये और निश्चित स्थान पर सुन्दर दो-मंजिला पीठभवन निर्माण कराया। इसके सामने ही कुछ दूरी पर श्री पूर्णागिरि देवी का मन्दिर, जिसका निर्माण स्वर्गीय दरभंगा-नरेश, हिज हाइनेस, महाराजा रामेश्वर सिंह ने आरम्भ कराया था, किन्तु अधूरा ही रह गया था, उसे पूर्ण कराया और देवी जी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। यह भवन ज्योतिष्पीठ-भवन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह अत्यंत रमणीक और विशाल है। श्री बदरीनारायण जानेवाले मार्ग पर स्थित है। इसमें ३० कमरे हैं और सैकड़ों

व्यक्ति एक साथ निवास कर सकते हैं।

धर्म प्रचारार्थ भ्रमरा हो रहा था। विभिन्न प्रान्तों में जा-जाकर जनता को अपने दर्शन व उपदेशों से आकृष्ट कर रहे थे। इतनी शीघ्रता से ज्योतिष्पीठ की सर्वोपरि प्रतिष्ठा बढ़ी कि दो तीन वर्ष में ही समस्त उत्तर भारत की धार्मिक जनता को अपने धर्मपीठ पर अभिमान होने लगा और अपने धर्माचार्य श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर महाराज की आदर्श व्यवस्था से धार्मिक समाज गौरवान्वित हो उठा। सर्वोपरि प्रतिष्ठा में शीघ्रता से प्रचार होने में कुछ विशेष काररा निम्नलिखित थे—

(१) श्री चररा के व्यक्तित्व में, जो विलक्षरा शांति पूर्ण तेजोमयी आभा थी, उसे जो एक बार दर्शन कर लेता था वह बार-बार दर्शन करना चाहता और प्रत्येक दर्शनार्थी दर्शन हो जाने के उपरान्त ऐसा प्रभावित होता और ऐसा अनुभव करता कि महाराज श्री उससे अधिक किसी से प्रेम नहीं करते।

(२) महाराज श्री के मुख से निकले हुये शब्दों में एक विशेष आकर्षरा था। आपके उपदेशों में सरलता, सरसता, और विषय मार्मिकता थी, जो अन्यत्र नहीं पाई जाती। इसके अतिरिक्त आपके अन्तर्यामित्व की कुछ ऐसी विचित्र व्यवस्था थी कि आपके उपदेशों में समीप में बैठे हुये श्रोताओं की शंकाओं का समाधान बिना पूछे ही हो जाता था। आपके उपदेश अपने अनुभवों की अचल आधार-शिला पर प्रतिष्ठित होने के काररा अत्यन्त प्रभावशाली होते थे।

(३) आपके व्यक्तित्व में जो प्रत्यक्ष महानता थी वह

तो थी ही, आपकी अनुपस्थिति में भी आपकी विलक्षण सिद्धियों का परिचय जनता को मिलता रहता था। आपके जिस भक्त ने जब भी अपने आपत्तिकाल में आपका स्मरण किया, उसी समय उसकी आपत्ति हट गई। सैकड़ों श्रद्धालु भक्त नित्य ही अपनी-अपनी आपत्तियों का निराकरण करने के पश्चात् उसी की कथा कहा करते थे। बड़े-बड़े नास्तिक आस्तिक बन गये। जो कभी किसी देवी-देवता को प्रणाम तक नहीं करते थे और ईश्वर की मान्यता को ढोंग समझते थे, वे भी अपने अपने घरों में नित्य सायं-प्रातः श्री चरण के चित्र की आरती उतारने लगे।

(४) आपके पूर्णतया त्यागमय व्यवहार की नीति से जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। आपकी नीति थी कि कभी किसी से भेंट-पूजा, विदाई आदि स्वीकार न की जाय। इस नीति का स्पष्टीकरण करनेवाली विज्ञप्ति का साइनबोर्ड आपके शिविर में तथा पीठभवन में लगा रहता था, जिसमें लिखा था—

> "भगवत्पूज्यपाद अनन्तश्री विभूषित, जगद्गुरु, शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर, स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज के दर्शन, पूजन, दीक्षा, आदि में द्रव्य चढ़ाने का निषेध है।"

इस नीति से जनता आश्चर्यचकित थी, क्योंकि सबने देखा कि इनके साथ पचासों सैकड़ों गृहस्थ, विरक्त-महात्मा रहते हैं। सबके साथ धर्म-प्रचार यात्राएँ भी करते रहते हैं और

कभी किसी से द्रव्य स्वीकार नहीं करते। इसकी व्यवस्था किस प्रकार होती है। इस विचार से लोगों की बुद्धि किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती और उन्हें महाराज श्री की योगजन्य एवं तपोजन्य सिद्धियों पर विश्वास करना पड़ता था। इसी से प्रभावित होकर विद्वानों ने महाराज श्री के नाम के आगे "अनन्त श्रीविभूषित" लिखना प्रारम्भ कर दिया। आचार्य-परम्परा की विरुदावली में यह "अनन्तश्री विभूषित" पद सर्व प्रथम पूज्यपाद महाराज श्री के लिये ही प्रयोग में लाया गया।

मध्यभारत के विभिन्न नगरों में भ्रमण करके शताब्दियों से शंकराचार्य जी की सुषुप्त भावना को पुनः जाग्रत किया। फलतः शंकराचार्य के जयघोष से सम्पूर्ण मध्यभारत गूँज उठा। कुछ समय जबलपुर में निवास करके आप पुनः प्रयाग पधारे। प्रयाग की जनता ने अत्यंत हर्ष एवं उत्साह के साथ आपका अभूतपूर्व स्वागत किया। एक वृहत् शोभायात्रा निकाली गई, जिसमें प्रयाग के प्रमुख धनी-मानी सेठ साहूकार, पंडित, विद्वन्मन्डल तथा राज्य कर्मचारी, पदाधिकारी वर्ग सम्मिलित हुआ। स्थान स्थान पर फाटक सजाये गये। मुहल्ले मुहल्ले के प्रमुख धनी-मानी भक्तों ने शोभायात्रा रोक रोक कर आरती उतारी और पूजन किया। अपूर्व दृश्य उपस्थित हो गया। आपकी यह शोभायात्रा प्रयाग के मुख्य मुख्य सड़कों से होती हुई चौक एवं घंटाघर पार करती हुई पुरुषोत्तमदास पार्क में सभा के रूप में परिणत हो गई। यहाँ महाराज श्री ने अपने उपदेशामृत से लोगों को कृतार्थ किया और चाँद प्रेस के विशाल भवन में, जहां कुछ दिन प्रयाग में विश्राम लेना था, आ गये।

उत्तर भारत के धर्मगुरु का कार्य-भार ग्रहण करने के अनन्तर आप धर्म पीठ की मर्यादा-वृद्धि में संलग्न हुए। अपने गुरुदेव को इस प्रकार कार्य परायण देख कर, आपका सभी शिष्यवर्ग, त्यागी-महात्माओं, विद्वानों से भी न रहा गया और धर्म-प्रचार ही अपना ध्येय बनाकर श्री महाराज जी के कार्य में पूर्ण सहयोग किया। बंगाल, विहार, उत्तर प्रदेश, राजपूताना, पंजाब एवं काश्मीर में सनातन-धर्म की ध्वजा फहराने लगी। महाराज श्री के धर्म प्रचार की इच्छा मात्र से सम्पूर्ण उत्तर भारत में विशिष्ट पंडितगण, महात्मागण एवं समस्त सन्त, महन्त कार्यक्रम बनाने लगे। हिन्दू समाज का एक स्थायी धर्म-संघ बन गया।

इधर संसार के लोग अनुभव कर रहे थे कि यह समय राजा-प्रजा, चर-अचर आदि सभी के लिये महान् संकट का है। भूमि के किसी भाग में शान्ति व सुख नहीं है। भूकम्प, अकाल, तरह तरह की महामारी व्याधियाँ तथा विश्व-व्यापी प्रलयकारी महायुद्ध, राष्ट्र-विप्लव आदि से सभी चिन्तित और व्यग्र हैं। ऐसे अवसर पर भौतिक बल पर विश्वास रखने वाले राष्ट्र युद्ध द्वारा शान्ति स्थापन का उपाय कर रहे हैं। विश्व की यह दयनीय दशा देख कर धर्म पीठ की दैवी-शक्ति जाग्रत हुई, प्रेरणा हुई और फलस्वरूप संसार की रक्षा के लिये आशुतोष भगवान् शंकर और पुत्र-वत्सला करुणामयी पराम्बा दुर्गा की सामूहिक रूप से आराधनाओं के वृहत आयोजन स्थान स्थान पर होने लगे।

दिल्ली के पुण्य-सलिला-यमुना-तट पर भगवान् शंकर की सब से बड़ी दैवी अराधना "शतमुख कोटि होमात्मक

महायज्ञ" का आयोजन हुआ। महाराज श्री की संरक्षता के के लिये प्रार्थना हुई। आचार्य श्री तथा धर्मपीठ का सहयोग था ही। पूज्यपाद ज्योतिष्पीठाधीश्वर आचार्य श्री ने संरक्षता प्रदान की। महाराज श्री दिल्ली पधारे। आपके दिल्ली पहुँ-चते ही महान् उत्साह और आनन्द फैल गया। स्वागत में आये हुये लोगों द्वारा दिल्ली स्टेशन का प्लेटफार्म इतना भर गया कि तिल धरने को भी स्थान नहीं रहा। भीड़ के कारण महाराज श्री को गाड़ी से उतर कर प्लेटफार्म से हो कर वाहर जाने में इतनी अधिक कठिनाई हुई कि बाहर तक पहुँचने मात्र में डेढ़ घण्टे लग गये। स्टेशन से ही शोभायात्रा प्रारम्भ हुई। उसके भव्य दृश्य एवं विशालता के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि समाचार पत्रों को यही लिखना पड़ा कि ऐसी शोभायात्रा दिल्ली में और कभी नहीं निकली। चारों ओर जन-समुद्र ही दीख पड़ता था। इस प्रकार आप दिल्ली के यज्ञशिविर में पहुंचे।

महायज्ञ के साथ साथ अखिल भारतीय-धर्म-संघ का महाधिवेशन, गोरक्षा-सम्मेलन, वर्णाश्रम स्वराज्य संघ का विशेषाधिवेशन आदि विराट् समारोह महाराज श्री की ही अध्यक्षता में हुये, जिनसे समस्त भारत में धार्मिक जागृति की एक लहर फैल गई। इस समय जो वैदिक सर्वशाखा सम्मेलन हुआ वह भारत के धार्मिक इतिहास में अभूतपूर्व था। भारत की राजधानी दिल्लीं में इस प्रकार महान् धार्मिक समारोह का नेतृत्व करके महाराज श्री ने ज्योतिष्पीठ की दैवी प्रभा से समस्त भारत में धर्म प्रकाश फैलाया।

जिस समय यमुना तट पर उपर्युक्त सम्मेलन हो रहे थे,

चारों ओर जन समुद्र उमड़ रहा था, इन्द्र आदि देवता भी सम्मिलित होने के लिये उत्सुक हो उठे। अपने दल-बादल सहित पहुँच गये। जाड़े के दिन थे ही। कड़ी ठण्ढ पड़ने लगी। ठंढी हवा के झोकों ने सारे तम्बू कनातों और खेमों को उड़ाना ही प्रारम्भ कर दिया। काले काले बादल घिर आये। छोटी-छोटी बूंदे पड़ने लगीं। ऐसा मालूम होने लगा कि घोर वृष्टि तथा ओले पत्थर पड़ने ही वाले हैं। बादलों की गरज भयानक होती गई। प्रातःकाल लगभग ७ बजे का समय था। महाराज श्रीअपने शिविर के एक खेमे से निकल कर दूसरे में गये। देखा—इस समय इन्द्र को कुछ बौखलाहट ? सी हो गई है। थोड़ी देर में अपने खेमे में लौट आये। बोल उठे, "इस समय यदि पानी पत्थर पड़ेगा, तो लोगों को बड़ा कष्ट होगा" फिर चुप हो गये और अपने किसी दूसरे कार्य में लग गये।

यमुना-तट पर इस महान् यज्ञ का जो वृहत् आयोजन हो रहा है, जिसमें जाड़े की ठंढ में यमुना जी की बालू पर लाखों की संख्या में छोटे-बड़े, धनी-मानी सेठ-साहूकार व्रह्मचारी साधु-महात्मा तथा स्त्री-बच्चे धर्मयज्ञ में सम्मिलित होकर कष्ट उठा रहे हैं, उन सब की संरक्षता का भार महाराज श्री ही के ऊपर तो था। ऐसे कठिन समय में वह क्यों न रक्षा करते ? उन्होने जिन उपर्युक्त शब्दों का उच्चारण किया था, वे इसीलिये कि इन सभी भक्तों की रक्षा हो जाय। महाराज श्री ने इन शब्दों का उच्चारण ७ बजे प्रातःकाल किया था। उसके एक घण्टे बाद आकाश का दृश्य बदल गया। आकाश निर्मल हो गया। बादल जाने कहां चले गये। वायु साधारण

रूप से बहने लगी। धूप निकल आई। अधिवेशन का कार्य सुचारु रूप से, जिस प्रकार प्रतिदिन चलता था, उसी प्रकार चलता रहा। सभी बाधायें अकस्मात् शान्त हो गईं और दिल्ली का 'शतमुख कोटि होमात्मक महायज्ञ' निर्विघ्न समाप्त हुआ।

दिल्ली के इस महान् धार्मिक समारोह के पश्चात् तीन महीने के भीतर ही भगवती भागीरथी के तट पर कानपुर के केवल ब्राह्मण-मंडल ने द्वितीय 'शतमुख कोटि होमात्मक महायज्ञ' का आयोजन किया। इसमें भी महाराज श्री ने पधार कर अपनी दैवी संरक्षता प्रदान की। बड़े ही सात्विक ढंग से यह द्वितीय 'शतमुख कोटि होमात्मक महायज्ञ' सम्पन्न हुआ। विश्व शांति के उद्देश्य से इन दो 'शतमुख कोटि होमात्मक महायज्ञ, के द्वारा उत्तर भारत में यज्ञयुग की नींव सुदृढ़ हुई। आप कानपुर से प्रस्थान करके कुछ दिन विश्राम करने के लिये प्रयाग आ गये।

ता० २७ मई, १६४४ ई० को महाराज श्री ने प्रथम बार पीठयात्रा के लिये प्रस्थान किया। समाचार मिलते ही हरिद्वार से बदरीनाथ धाम तक जनता में अपूर्व उत्साह छा गया और गढ़वाल में धार्मिक जनता ने स्थान स्थान पर स्वागत-समितियों का निर्माण कर लिया। ता० २८ मई, १६४४ ई० को हरिद्वार में पधारते ही, वहां की दण्डी-संन्यासी मण्डली, निरंजनी अखाड़ा, निर्वाणी अखाड़ा; जूना अखाड़ा, सन्त आश्रम के साधु सन्त महात्मा, कर्मवीर महन्त श्री शान्तानन्द नाथ जी, स्वामी शिवदयालु गिरि जी आदि संन्यासियों के समुदाय ने तथा विद्वत् समिति, गंगा सभा,

महावीर-दल, अग्निदल, वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ आदि संस्थाओं, ऋषिकुल आदि पाठशालाओं एवं म्युनिसिपल तथा सरकारी अधिकारी-वर्ग और कर्मचारियों ने जिस समारोह के साथ भगवान् शंकराचार्य महाराज का स्वागत और शोभायात्रा का आयोजन किया वह हरिद्वार के इतिहास में अपूर्व दृश्य था। सभी वर्ग ने महाराज श्री का श्रद्धापूर्वक अभिवादन और अभिनन्दन किया। श्रवणनाथ-ज्ञान-मन्दिर में तथा कुशावर्त में आपके उपदेश हुये। जिस समय महाराज श्री ब्रह्मकुण्ड पर पधारे और अपने ब्रह्मदण्ड से उत्तराखण्ड के प्रधान तीर्थ का स्पर्श किया उस समय भगवती भागीरथी का हृदय मानो उछल उठा, जिन्होंने देखा उन्होंने उसका अनुभव किया। वह दृश्य वर्णनातीत था। धर्म के जयघोष से आकाशमंडल गूंज उठा। लाखों नर-नारियों ने जगद्गुरु का दर्शन प्राप्त कर अपना जीवन सफल किया।

ता० १ जून, १६४४ ई० को आचार्य श्री ऋषीकेश पधारे। ऋषीकेश महात्माओं की नगरी है। वहां की शोभा-यात्रा और स्वागत में दैवी चमत्कार प्रत्यक्ष हुआ। मध्याह्न की कड़ी दोपहरी में जैसे जैसे जुलूस बढ़ता था, आगे आगे मेघ छाया करते चल रहे थे। शताब्दियों के बाद इस प्रदेश में शंकराचार्य का दर्शन हुआ। सभी सन्त-महात्मा इस प्रकार धर्म की जागृति देखकर प्रसन्न हुये। इसी प्रकार देवप्रयाग और श्रीनगर में महान् समारोह के साथ आपका स्वागत हुआ। श्रीनगर में पौड़ी के भी गण्यमान्य पुरुष पधारे थे। वहां की जनता का उत्साह देखकर और ज्योतिर्मठ के प्रति इस उद्देश्य की श्रद्धा भक्ति-देखकर महाराज श्री को भी

सन्तोष हुआ। तदनन्तर रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग तथा नन्द प्रयाग का स्वागत ग्रहण करते हुये आप चमोली (लालसांगा) में पहुंचे। वहां की जनता ने भी आपका हार्दिक स्वागत सत्कार किया। इस प्रकार महाराज श्री ता० ६ जून, १६४४ ई० को ज्योतिर्मठ पहुंच गये। वहां की जनता आपके स्वागत के लिये अत्यन्त उत्सुक थी ही। अतः जोशीमठ से लगभग १ मील प्रथम से यहाँ की जनता श्री आचार्य चरण का स्वागत कर एक शोभायात्रा के रूप में श्री महाराज जी को ज्योतिर्मठ तक ले गई। पींठ भवन में पहुँचते ही आपने उपस्थित जनता तथा उत्तर भारत की समस्त हिन्दू राजा प्रजा को शुभाशीर्वाद देते हुये पीठभवन में पदार्पण किया।

इस वर्ष १६४४ ई० में आपने यहीं चातुर्मास्य व्रत किया। आषाढ़ी पूर्णिमा को जगद्गुरु शंकराचार्य महाराज श्री का महान् समारोह के साथ पूजन हुआ। इस काल में सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश में विशेष धार्मिक जागृति हुई। आश्विन शुक्लाष्टमी (शारदीय नवरात्र) को नव-निर्मित भव्य मन्दिर में जिसे महाराज श्री ने ही पीठभवन निर्माण के साथ साथ बनवाया था, श्री पूर्णगिरि देवी की विशाल मूर्ति की प्रतिष्ठा कर वहां एक संस्कृत-विद्यालय की स्थापना की। इसके पश्चात् महाराज श्री ने धर्म-प्रचारार्थ पर्वतीय प्रदेश ज्योतिर्मठ से प्रस्थान किया।

ज्योतिर्मठ से आचार्य श्री भारत के विद्याकेन्द्र भगवान् विश्वनाथ की पुरी काशी जी पधारे। इस समय काशी के अस्सी घाट गंगा तट पर सात अतिरुद्र और पाँच महारुद्र महायज्ञों का एक साथ ही एक विशाल मण्डप में आयोजन किया

गया था। उसी अवसर पर अखिल-भारतीय-धर्म-संघ का चतुर्थ वार्षिक महाधिवेशन भी हुआ। दिल्ली के वृहत समारोह के समान काशी के इस धार्मिक समारोह का नेतृत्व महाराज श्री ने ही किया। आप की संरक्षता में वृहत् आयोजन पूर्ण हुआ, जिसका धार्मिक प्रभाव समस्त देश पर पड़ा।

विश्वनाथपुरी में भगवान् शंकर की वृहत् उपासना के बाद अब विश्व-कल्याणार्थ भगवती दुर्गा की आराधना प्रारम्भ हुई। भगवती की सब से बड़ी आराधना लक्षचण्डो महायज्ञ का आयोजन प्रथम वार लखनऊ में हुआ। देवी की उपासना मे विघ्न स्वाभाविक हैं। किन्तु आचार्य श्री के पदार्पण से समस्त परिस्थिति अनुकूल हो गई। द्वितीय लक्षचण्डी यज्ञ उदयपुर राज्य में और तृतीय बम्बई नगर में सम्पन्न हुए। आचार्य श्री बम्बई के लक्षचण्डो महायज्ञ मे पधारे। वहा अखिल-भारतीय धर्मसंघ के वार्षिक महाधिवेशन का नेतृत्व किया और अपने तेजोमय आभापूर्ण व्यक्तित्व एवं त्यागपूर्ण व्यवहारों और मार्मिक उपदेशों द्वारा दक्षिण पश्चिम भारत मे उत्तराम्नाय के धर्माचर्य के स्वरूप का सर्वोपरि आदर्श स्थापित किया।

प्रयाग के सन १९४२ ई० के कुम्भ से १९४८ई० अर्द्ध कुम्भ तक भारत में सर्वत्र बड़े-बड़े महायज्ञ सम्पन्न हुए। महाराज श्री के पीठाधीश्वर होने के पश्चात् समस्त भारत में एक अपूर्व धर्म जाग्रति हो गई और जहाँ तहाँ सभी ओर सनातन धर्म का डंका बजने लगा। यह सब महाराज श्री के व्यक्तित्व की महानता थी।

बम्बई के लक्षचण्डी महायज्ञ का नेतृत्व करने के पश्चात् आप मध्यप्रांत मे जबलपुर के पास बंधा ग्राम में कुछ समय

विश्राम करने के लिये आगए। यहाँ भी आपका एक चातुर्मास्य व्रत हुआ और चारों ओर अपने उदेशामृत से सब लोगों को कृतार्थ किया। यही से अर्द्धकुम्भ के अवसर पर प्रयाग पधारे। इस समय पूज्यपाद शारदा-पीठाधीश्वर स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज भी प्रयाग पधारे। पर्वस्नान के लिए दोनों धर्मचार्यो की सम्मिलित शोभायात्रा का दृश्य परम मनोहर था। महाराज श्री की सवारी एक चान्दी सोने की शिविका पर आगे थी। उसके बाद दूसरी चान्दी-सोने की शिविका पर शारदापीठाधीश्वर जी की सवारी थी। इसके बाद निर्वाणी, निरंजनी, जूना अखाड़ों के महन्त मंडलेश्वरो की पंक्ति थी। दोनो धर्माचार्यों का साथ साथ स्नान हुआ और संसार ने देखा की धर्मपीठो के आचार्यगण कितनी अभिन्न हृदयता के साथ परस्पर व्यवहार रखते हैं।

अर्द्धकुम्भ के पश्चात् भी कुछ दिन महाराज श्री प्रयाग मे ही रहे और उस वर्ष का चातुर्मास्य व्रत, चाँद प्रेस एडमान्सटन रोड में सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् पुनः धर्म प्रचार यात्रा प्रारम्भ की। भक्तों की प्रार्थना पर सर्व प्रथम इटावा पधारे। वहाँ डा० विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा के स्थान "श्री ज्योतिधाम में निवास किया। दैनिक प्रातः-दर्शन दीक्षा आदि एवं सायंकाल उपदेश का कार्यक्रम चलता रहा

कुछ दिन इटावा में निवास करके श्री चरण कछलाघाट एक यज्ञ में पधारे। यहाँ पर श्री शंकराचार्य महाराज के स्वागत में एक वृहत् शोभायात्रा निकाली गई और जनता ने अपने धर्माचार्य का भव्य स्वागत किया। प्रतिदिन सायंकाल महाराज श्री का उपदेशामृत पान करने के लिये जनता की

अपार भीड़ होती रही। सरल सुबोध भाषा में धर्म के गूढ़ रहस्यों का प्रतिपादन सुन कर जनता अत्यंत लाभान्वित होती रही।

कछलाघाट का यज्ञ सम्पन्न करके महाराज श्री शूकरक्षेत्र (सोरों) पधारे। यहां के तीर्थ-पुरोहितो एवं धार्मिक जनता ने अपने धर्माचार्य के स्वागत मे एक भव्य शोभायात्रा निकाली। अंत में सभा हुई, जिसमें जनता तथा विशिष्ट संस्थाओं द्वारा अभिनन्दन आदि भेंट किये गये।

कासगंज (एटा) से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों ने आकर महाराज जी से कासगंज पधारने की प्रार्थना की। भक्तों की विशेष आतुरता देख कर श्री चरण कासगंज पधारे। यहा भीं भव्य शोभायात्रा निकाली गई और स्थान स्थान पर भक्तों द्वारा आरती-पूजन द्वारा स्वागत हुआ। यहाँ आपका शिविर एक बगीचा में रहा, जहाँ प्राप्तःकाल से रात्रि ११-१२बजे तक दर्शनार्थियों एवं जिज्ञासुओं का ताता बँधा रहता।

आगरा के विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा कई बार की गई प्रार्थना पर महाराज श्री कासगंज से आगरा पधारे। यहाँ पर कुछ दिन आपका निवास 'भदावर हाउस' और कुछ दिन 'हरि पर्वत' पर रहा। सदा की भाति नित्य दर्शन-दीक्षा, उपदेश आदि का कार्यक्रम चलता रहा।

मुरादाबाद के विद्वानों एवं जनता द्वारा प्रार्थना पर आप आगरा से मुरादाबाद पधारे। स्वागत में विशाल शोभायात्रा निकाली गई। स्थान स्थान पर जनता ने अपने धर्माचार्य का पूजन आरती द्वारा स्वागत किया। दर्शनार्थियों की

अपार भीड़ बढ़ती गई। सभी मंत्रमुग्ध की भाँति श्री शंकराचार्य का दर्शन पाकर उपदेश सुनकर तृप्त होते रहे।

इस प्रकार क्रमशः धर्म प्रचार करते हुये महाराज श्री ने इस वर्ष ग्रीष्मारम्भ में ज्योतिष्पीठ की दूसरी यात्रा की। पर्वतीय जनता इस समय विकट परिस्थिति में दिन व्यतीत कर रही थी। पर्वत में बहुत काल से वर्षा नहीं हुई थी और और जनता अत्यंत दुखी थी। खेतों की सारी फसल सूखकर समाप्त हो रही थी। वर्षा होने की सम्भावना हो सकने का कोई आभास भी नहीं होता था। परंतु जिस दिन महाराज श्री ने पीठभवन में प्रवेश किया पर्वत की चोटियों पर बादल दिखने लगे। दूसरे दिन बादलों से सारा आकाश आच्छादित हो गया और वर्षा भी होने लगी। चार दिन तक लगातार वर्षा होती रही। पर्वत की सारी जनता अत्यन्त प्रसन्न हो गई और सभी के मुख से यही शब्द निकल पड़े कि महाराज श्री के प्रसाद से ही वर्षा हुई है। दूर-दूर से महाराज श्री के दर्शन के लिए लोग दौड़ पड़े। दर्शन करते हुये भावुक और सरल भक्तों ने कहा "महाराज, हमने सुना है कि आपके पधारने से ही वर्षा हुई है। यह प्रत्यक्ष भी है, क्योंकि आपके आने के पूर्व तीन माह से यहाँ वर्षा नहीं हुई थी। सारी जनता में हाहाकार मच गया था। वर्षा होने से हम सब प्रसन्न हैं और यह सब आपके पदार्पण का ही प्रभाव है।,'

महाराज श्री ने इस वर्ष १६४६ ई० का चातुर्मास्य व्रत यहीं किया और अपने धर्मोपदेश से पर्वतीय जनता को आनन्दित करते हुए वैदिक धर्म की ओर अग्रसर किया। अपना चातुर्मास्य-व्रत समाप्त करके फिर धर्म-प्रचार-यात्रा के

लिये प्रस्थान किया। प्रयाग, काशी, कलकत्ता, हरिद्वार, देहरादून, मंसूरी आदि स्थानों में भ्रमण करके स्थान स्थान पर सनातन धर्म की विजय-पताका फहराई। सभी स्थानों में धार्मिक जागृति हुई। जनता में अपूर्व उत्साह और भगत्परापणता में अनूठी निष्ठा का विशिष्ट वीजारोपण हुआ।

१९५० ई० में महाराज श्री का निवास लखनऊ में हो रहा था। राजा दिलीपपुर, श्री पशुपति प्रताप सिंह उस समय श्रीचरण के दर्शनार्थ वहाँ गये हुये थे। एक दिन उन्होंने महाराज श्री से प्रार्थना की, "इस विचार से कि प्रयाग में एक आश्रम बन जाय, मैं अलोपीबाग-स्थित अपनी कोठी ज्योतिर्मठ गद्दी को अर्पण करना चाहता हूँ।" महाराज श्री ने उनकी यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी। कारण यह था कि आपकी यह नीति थी कि कभी किसी से कोई भेंट-पूजा, बिदाई न लेना और जहाँ जाते थे अपने शिविर के सामने के यह सूचनापट टँगवा देते थे कि इस शिविर में कोई भेंट, पूजा-द्रव्य आदि नहीं चढ़ेगा। किन्तु राजा साहब के बार-बार आग्रह करने पर महाराज श्री ने कहा, "यदि कोठी का बयनामा हमारे नाम कर दो, तो हम ले लेंगे।" इस पर वह राजी हो गये। इसके बाद महाराज श्री ने राजा दिलीपपुर के सेक्रेटरी को बुलाया और कोठी की कीमत पूछी। सेक्रैटरी ने कहा, "पिछले वर्ष यह कोठी बिकाऊ थी। उस समय राजा साहब ने उसकी कीमत एक लाख रुपये माँगी थी, किन्तु खरीदार ने ६५०००) पैंसठ हजार रुपये लगाये थे। इससे यह कोठी नहीं बिकी"। इसके बाद महाराज श्री ने विचार

किया कि हमारा तो जिस खदान से ६५,०००) आयेगा उसी से एक लाख भी आ जावेगा। इसलिये उसकी कीमत एक लाख ही क्यों न दे दी जाय।

एक दिन महाराज श्री ने राजा दिलीपपुर को बुलाया और उनको एक लाख रुपया कोठी की कीमत और रजिस्ट्री आदि के खर्च के लिये रुपये दिये और कहा कि कोठी का बयनामा इलाहाबाद में जाकर हमारे नाम कर दो। उन्होंने महाराज श्री से एक आदमी माँगा। महाराज श्री ने उनके साथ अपना एक अन्तरंग सेवक कर दिया। बयनामा हो गया और कोठी महाराज श्री के नाम से बय हो गई।

बयनामा हो जाने के बाद इलाहाबाद में चर्चा चली कि महाराज श्री के पास एक लाख रुपया कहाँ से आया। वे किसी से द्रव्य लेते नहीं और कहीं से कोई आमदनी भी नहीं है। पहिले तो रजिस्ट्रार से पूछा गया कि रुपया बयनामे का दिया भी गया? रजिस्ट्रार ने कहा मेरे सामने रुपया दिया गया। उनसे पूछा—नोट कैसे थे। उन्होंने कहा जैसे साधारणतया होते हैं, वैसे ही थे। लोग बड़े आश्चर्य में हो गये। इसके दो महीने बाद महाराज श्री स्वयं इलाहाबाद आये। लोगों ने महाराज से पूछा, "महाराज श्री किसी से कुछ लेते तो हैं नहीं और एकटठा एक लाख रुपये महाराज जी ने दे दिया। इससे लोगों को बड़ा आश्चर्य है कि यह एक लाख रुपये कहां से आया।" महाराज श्री ने कहा कि इस रुपये के आने में किसी मनुष्य का हाथ नहीं है। जब बहुत पूछा गया तो महाराज श्री ने कहा "महाभारत के समय जब द्रौपदी की चीर बढ़ी थी तो हजारों गज बढ़े हुये वस्त्र कहाँ

से आये ? दूसरी बात यह है कि द्रौपदी जैसी साड़ी पहने पहने थी, वैसा ही कपड़ा आया। कुछ लाल, कुछ हरा, कुछ पीला, ऐसा नहीं हुआ। भगवान् जब देते हैं, तो पूरा देते हैं और सच्ची वस्तु देते हैं। जो काम महाभारत के समय में हो सकता था, वह अब भी हो सकता है। भगवान् सदा एक रस रहते हैं, उनमें कोई अंतर नहीं आता।"

जिस समय यह कोठी खरीदी गई थी, उसकी स्थिति जर्जर थी। महाराज श्री ने प्रयाग में इसे ज्योतिमंठ का एक विशिष्ट स्थान बनाने के लिये उसमें पूर्णतया सुधार तथा नवनिर्माण कराया। वह एक विशाल आश्रम बन गया, जो आज दिन "ब्रह्म-निवास" के नाम से विख्यात है। उसमें पचासों कमरे हैं और ऊपर नीचे सैकड़ों की संख्या में साधक, ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि निवास कर सकते हैं।

——

नवाँ अध्याय

महान् आध्यात्मिक नेतृत्व

प्रयाग में लगभग एक महीना निवास करने के बाद महाराज जी काशी होते हुए कलकत्ता पधारे। इस समय भारतीय दर्शन-परिषद् की रजत-जयंती कलकत्ता में मनाई जा रही थी। विश्व के अनेक दानिक एकत्र हुये थे। महाराज श्री को उस जयंती-समारोह में अध्यक्ष-पद पर आसीन कराया गया। सभापति के पद से आपका उपदेश हुआ। विश्व के उच्चकोटि के दार्शनिकों ने जब महाराज श्री का उपदेश सुना, तो मुग्ध हो गये। कुछ दार्शनिकों की जिज्ञासा हुई कि महाराज श्री से एकान्त में मिला जाय।

दूसरे दिन भारत के सर्वमान्य दार्शनिक-शिरोमणि डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् को आगे करके अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक डा० काँगर और डा० शिल्प रात्रि में लगभग १० बजे श्री शंकराचार्य-शिविर में आये। महाराज श्री ऊपर की छत पर विराजे थे। एकान्त था। कोई प्रकाश नहीं था। बाहर चाँदनी छिटकी थी। गुरु के सानिध्य में उनका एक सेवक अध्यात्म-राज्य की अनन्तानन्दानुभूति में निमग्न था। द्वारपाल ने आकर कहा "डा० राधाकृष्णन् जी के साथ इंगलैंड व अमेरिका के दो दार्शनिक दर्शनार्थ आये हैं।" आगन्तुकों की सूचना देकर द्वारपाल खड़ा था। लगभग एक मिनट बाद महाराज श्री ने कहा, "यह कौन समय है मिलने का? कोई

समय तो दिया नहीं गया था।" समीपस्थ सेवक को ऐसा लगा कि महाराज श्री कहते हैं, "कह दो नहीं मिलेंगे," क्योंकि ऐसे समय में प्रायः ऐसा ही होता था। सेवक ने प्रार्थना की, "यदि महाराज श्रीं उचित समझें, तो दो-चार मिनट दे दें। दिन में इन लोगों को अवकाश न मिलता होगा।" महाराज श्री ने कहा, "अच्छा तो लिवा लाओ।"

आगे डा० राधाकृष्णन् उनके पीछे डा० काँगर और उनके बगल में डा० शिल्प थे। सब लोग एक के बाद एक प्रणाम करके सामने एक कालीन पर बैठ गये। परिचय समाप्त होने पर डा० राधाकृष्णन् ने महाराज श्री से कहा, "डा० कांगर वेदान्त के सम्बन्ध में कुछ सुनना चाहते हैं। तत्वदर्शन के लिये वे महाराज श्री की सहायता चाहते हैं।" महाराजश्री ने कहा—

"वेदान्त प्रतिपाद्य तत्व तो स्वतः सिद्ध पदार्थ है। वह स्वयं प्रकाश है। उसको प्रकाशित करने के लिये अन्य किसी प्रकाश की अवश्यकता नहीं।" डा० काँगर ने जिज्ञासा प्रकट की "वेदशास्त्र में जो तत्वप्राप्ति के साधन हैं, वे व्यर्थ तो नहीं कहे जा सकते।" महाराजश्री ने कहा, "साधन जो हैं वे ब्रह्म को प्रकाशित करने के लिये नहीं हैं। उनका तात्पर्य केवल अविद्या की निवृत्ति में है। साधन अविद्या का नाश करते हैं। ब्रह्म का प्रकाश नहीं। जो स्वतः प्रकाश है। उसको देखने के लिये किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं। जैसे सूर्य स्वतः प्रकाशमान है, उसको देखने के लिये किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। सूर्योदय के पहिले अरुण का उदय होता है, किन्तु अरुणोदय केवल रात्रि के अंधकार को हटाता

है। वह सूर्य को प्रकाशित नहीं करता। सूर्य तो स्वयं प्रकाश रूप है। जितने साधन हैं वे सब अविद्या को ही निवृत्त करते हैं। आत्मा का प्रकाश नहीं करते। आत्मा तो स्वतः प्रकाश रूप और सबका साक्षी है।''

सारगर्भित उपदेश सुनकर डा० राधाकृष्णन् गद्गद होकर सहसा बोल पड़े—कितनी सरलता से कितने गूढ़ प्रश्न को महाराज ने हल कर दिया। इसके बाद श्रीचरण को कष्ट देने के लिये क्षमा याचना करते हुये, शिष्टाचारपूर्ण भाव से सब लोग विदा हुये।

कलकत्ता में लगभग एक महीना विश्राम करके महाराज श्री पटना आ गये। श्री शंकराचार्य-शिविर, अरोड़ा बिल्डिंग में बिहार के राज्यपाल श्री अणे महोदय ने ता० २३ मार्च को आकर पूज्यपाद श्री शंकराचार्य जी महाराज का षोडशोपचार पूजन किया और लगभग ४५ मिनट तक शान्तचित्त से उपदेशामृत का पान किया।

दूसरे दिन बिहार के मंत्रीगण महाराज श्री के दर्शनार्थ शिविर में आये। महाराज श्री ने लगभग एक घण्टा तक उनसे बातें कीं और धर्म तथा नीति सम्बन्धी महत्वपूर्ण विषयों पर उपदेश दिया और कहा, "परमात्मा व्यापक है और अन्तर्यामी है। सभी के भले बुरे कर्मों को वह जानता है। अल्पज्ञ मनुष्यों की दृष्टि तो बचाई जा सकती है, परन्तु अन्तर्यामी परमात्मा से छिपाकर कोई कार्य नहीं किया जा सकता।''

२६ मार्च, १९५१ ई० को पटना से हवाई जहाज द्वारा

प्रस्थान कर लखनऊ के अमौसी अड्डे पर उतरे। यहाँ पर लखनऊ व उन्नाव एवं कानपुर के लोगों ने भव्य स्वागत किया। यहाँ से कार द्वारा महाराज श्री कानपुर पधारे। जन-समुद्र उमड़ पड़ा। सड़कों पर अपार भीड़ और ऊपर मकानों से महिलाओं द्वारा पुष्पवृष्टि ने अपूर्व दृश्य उपस्थित कर दिया। फूलबाग से विराट् शोभायात्रा निकाली गई। सम्पूर्ण मार्ग झंडियों और तोरणों से भव्य रूप में सजाया गया। वाल्मीकि, याज्ञवल्क्य, पाराशर, चाणक्य, शाण्डिल्य आदि महर्षियों के नाम वाले फाटक द्वारा सजाये गये। उनसे होकर जाती हुई शोभायात्रा का दृश्य कानपुर के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ हो गया। मार्ग में पग-पग पर पूजन किया गया। आरती उतारी गई। भक्तों की टोली की टोली ने पुष्प-मालायें लिये स्वागत अभिनन्दन किया। बीसों भक्त बड़े-बड़े कटोरों में केसरिया चंदन लिये हुये मार्ग में सबको चन्दन लगा रहे थे। पादुकाओं पर पुष्प मालाओं का ढेर इतना ऊँचा हो जाता था कि कई बार पुष्प हटाये गये। इस प्रकार महाराज श्री की शोभायात्रा जयपुरिया हाउस के विस्तृत मैदान में ही सभा के रूप में परिणत हो गई।

कानपुर की जनता की ओर से श्रद्धांजलि समर्पित होने के बाद महाराज श्री ने अपने उदेपश में कहा, "वैसे हमारे लिये स्वागताभिनन्दन की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु भारतीय संस्कृति के अनुसार गुरु का स्वागत एवं शिष्टाचार भी हो तो ठीक है, उसे हम स्वीकार करते हैं। किन्तु इससे आगे हमारा स्वागत यह है कि आप हमें अपना कुछ समय दें। क्योंकि जैसा देवता होता है, वैसा ही उसका पूजन होता

है। जैसा मेहमान हो, वैसा स्वागत होना चाहिये। हम हिमालय से उतरे हैं, तो हमारा स्वागत भी हिमालय जैसी कोई बड़ी चीज से होना चाहिये। समय ही संसार में सबसे बड़ी मूल्यवान् वस्तु है, उसी से हमारा स्वागत करो। जो वस्तु आपको अत्यन्त प्रिय हो वही अर्पण करो। हमने देखा है कि सबसे प्रिय वस्तु मनुष्य को दुर्गुण होता है। उसे छोड़ने के लिये मनुष्य तैयार नहीं होता। धन खर्च करता है, अपमान सहता है, शरीर क्षीण होता है तो भी उसकी परवाह नहीं करता। इसलिये हमें अपना परम प्रिय दुर्गुण अर्पण करो। वही हमारी सेवा पूजा है। यही भेंट हम लेते हैं। कानपुर में थैलियाँ भेंट करने की प्रथा है। पर हम कंकड़-पत्थर रुपया-पैसा की थैली से संतुष्ट होने वाले नहीं। हमें तो जनता के दुर्गुणों की थैलियाँ चाहिये।"

इस प्रकार प्रतिदिन शिविर के विस्तृत सुरम्य उद्यान में ८ से १२ हजार जनता के समक्ष सायंकालीन उपदेश होते रहे। महाराज श्री का निवास कानपुर में डेढ़ मास रहा। प्रतिदिन जनता बढ़ती ही गई। दर्शनार्थियों का ताँता लगा ही रहता। इस अवधि के अनन्तर श्री महाराज का कार्यक्रम प्रयाग जाने का बना। यह समाचार सुनकर धार्मिक जनता अधिक संख्या में एकत्रित हुई और सायंकालीन भाषण के पश्चात् लगभग ५० हजार जनता एक स्वर से प्रार्थना करने लगी "अभी महाराज श्री कुछ समय और ठहरें और अग्रिम चातुर्मास्य-व्रत कानपुर में ही हो।"

किन्तु पूर्व निश्चयानुसार १३ मई, १९५१ को महाराज श्री कार द्वारा कानपुर से प्रयाग पधारे। प्रयाग की जनता

प्रातःकाल ८ बजे से ही प्रतीक्षा में खड़ी थी। नगर से पाँच मील आगे कई प्रतिष्ठित नागरिक अपनी-अपनी मोटर में स्वागत करने के लिये पहिले से ही उपस्थित थे। ब्रह्मनिवास आश्रम, प्रयाग में कार से उतरते ही षोडशोपचार पूजन हुआ और जनता में अत्यंत हर्ष उल्लास की बाढ़ आ गई।

ब्रह्मनिवास आश्रम में नित्य प्रातःकाल ८॥ से १० बजे तक दर्शनार्थियों एवं दीक्षार्थियों की भीड़ लगी रहती। कभी-कभी दीक्षा में अत्यधिक भीड़ होने के कारण 1 व 1॥ बज जाता। सायंकाल ८॥ बजे सामूहिक दर्शन व उपदेश होते। अग्रिम चातुर्मास्य-व्रत के लिये सभी प्रांतों से प्रार्थनायें आने लगीं। कलकत्ता, पटना, लखनऊ, नागपुर, बम्बई, से विशेष अनुरोध हुआ। अन्त में महाराज श्री ने चातुर्मास्य-व्रत प्रयाग में ही करना निश्चय किया। धार्मिक संस्थाओं एवं धार्मिक जनों में उत्साह की अपूर्व लहर फैल गई। अपने-अपने ढंग से सभी लोग गुरुपूर्णिमा महोत्सव को वृहत्तर और सुन्दरतम बनाने के लिए प्रयत्नशील हो उठे। गुरुपूर्णिमा-महोत्सव अत्यन्त हर्ष एवं उत्साह के साथ मनाया गया। चातुर्मास्य-व्रत काल में दर्शन, पूजन, दीक्षा, उपदेश आदि का क्रम पूर्ववत् चलता रहा। गुरुवार और रविवार को सामूहिक उपदेश आश्रम के विस्तृत प्रांगण में होते थे। भीड़ इतनी अधिक होती थी कि सम्पूर्ण प्रांगण श्रोताओं से भर जाता था। उपदेश के समय आश्रम में एक विशिष्ट धार्मिक मेला लग जाता था। कभी-कभी श्रोताओं के अत्यधिक एकत्र हो जाने पर महाराज श्री का सिंहासन आश्रम के फाटक के ऊपर वाली छत पर लगाना पड़ता था, जिससे जनता सुचारु रूप से महाराज श्री का दर्शन और उनके उपदेशामृत का पान कर सके।

लखनऊ, जबलपुर, सूरत तथा बम्बई पधारने के लिये श्री चरण के पास प्रार्थनायें आने लगीं। अधिक प्रार्थनाओं का आना देख कर प्रयाग के विद्वानों ने प्रार्थना की कि वर्ष में एक बार माघ मास में सब तीर्थ तीर्थराज प्रयाग में आकर निवास करते हैं। इस समय यदि महाराज श्री प्रयाग छोड़ कर अन्यत्र जायँगे, तो सभी तीर्थों की अवहेलना होगी और तीर्थ-राज का अपमान होगा। इस दृष्टि से इस वर्ष के माघ में अवश्य ही आप अपने दर्शन एवं उपदेश से तीर्थराज की शोभा बढ़ावें। प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। कार्यक्रम पूर्ववत चलता रहा। किन्तु माघ मेले में आये हुये कल्पवासियों की प्रर्थना पर माघ भर प्रति रविवार व गुरुवार को स्थान पर नित्य उपदेश होता रहा।

२३ फरवरी, १९५२ ई० को श्री शंकराचार्य-सेवक-संघ द्वारा शिवरात्रि महोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया गया। कार्यक्रम मध्याह्न से प्रारम्भ होकर ८ बजे रात्रि तक चलता रहा। सायंकाल सामूहिक दर्शन उपदेश के समय शिवरात्रि के अवसर पर महाराज श्री का सामूहिक पूजन हुआ। आश्रम का प्रांगण दर्शनार्थियों से भर गया और सभी ने सामूहिक पूजन में व्यक्तिगत रूप से अपनी-अपनी थाली में आरती की। यह आरती अपने-अपने स्थान से ही सामूहिक रूप में की गई इसका दृश्य अत्यन्त मनोरम और अपूर्व था।

दसवाँ अध्याय

अन्तिम धर्म-प्रचार-यात्रा

६ मार्च, १९५२ ई० को महाराज श्री की यात्रा का मुहूर्त प्रयाग से लखनऊ पधारने का निश्चित हो गया। यह समाचार प्रयागवासियों के मध्य बिजली की तरह फैल गया। १२ बजे मध्याह्न में यात्रा प्रारम्भ होने को थी। किन्तु प्रातः-काल से ही जनता आतुर हो होकर आश्रम में दर्शन के लिये एकत्र होने लगी। शहर में चारों ओर से भक्तों का ताँता लग गया और थोड़ी ही देर में आश्रम भर गया। यात्रा के समय जब महाराज श्री अपने कमरे से बाहर निकले तो भक्तों को यह विछोह सहन नहीं हुआ। क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी रो पड़े। इस यात्रा के समय भक्त लोग विशेष अधीर हो उठे-कौन जानता था कि यह आपकी अन्तिम यात्रा है। महाराज श्री ने एक दृष्टि से सभी को तृप्त करते हुए कार में बैठने के पूर्व अपने सेवकों को आदेश दिया, "शीघ्र चलो हमारे बैठते ही कार चल पड़नी चाहिये" इतना कहकर वे कार में बैठ गये। आश्रम में ऊपर नीचे भीतर बाहर सड़क पर इतनी अधिक भीड़ थी कि मोटर को आश्रम से बाहर निकलने में बड़ी कठि-नाई पड़ी। आँखों में आँसू भरे हुए भक्तों की भावनाओं से द्रवित हुए श्री भगवान् का कोमल हृदय सिहर उठा। व्यथित हृदय भक्तों के गगन भेदी जयकारों के बीच आश्रम से भगवान् की यात्रा प्रारम्भ हुई। मार्ग में स्थान-स्थान पर सड़क पर जनता श्री चरण के दर्शन की प्रतीक्षा करती हुई

खड़ी मिली। कहीं-कहीं सहस्त्रों नर-नारी फूल-माला, शंख-घंटा-घड़ियाल, आरती और पूजन की सामग्री लिये उपास्थित मिले।

लखनऊ से लगभग ७ मील दूर नागरिक जन अपनी अपनी मोटरकारें, जीपें और लारियाँ लेकर सैकड़ों की संख्या में श्री भगवान् के स्वागत में ४ बजे से ही प्रतीक्षा कर रहे थे। लगभग ५॥ बजे श्री भगवान् की कार वहाँ पहुँची। आरती पूजन आदि के अनन्तर जीपों में वैदिक मंडलियाँ वेद पाठ करती हुई भगवान् की कार के आगे चलीं। पीछे सभी भक्त जन अपनी-अपनी कारों में चले। इस प्रकार नागरिकों ने श्री चरण का अभूतपूर्व स्वागत किया।

लखनऊ में नित्य दिन में ११ से १२ बजे तक दर्शन सायंकाल ६ से ८ बजे तक कीर्तन, प्रवचन व उपदेश होते रहे। भगवान् शंकराचार्य के पदार्पण से लखनऊ में अपूर्व धार्मिक जागृति हो गई। श्री शंकराचार्य-सप्ताह मनाने का निश्चय किया गया। श्री चरणों के प्रति नागरिकों की जो अगाध श्रद्धा थी, उसे वर्णन कर सकना किसी के लिये सम्भव नहीं। श्री चरणों के प्रति कृतज्ञता के भाव प्रदर्शित करने तथा इस समारोह के बहाने श्री चरण के दिव्य अमृतमय सदुपदेशों से नगर निवासियों को अधिकाधिक लाभान्वित करने के लिये इस समारोह का आयोजन किया गया। श्री शंकराचार्य सप्ताह समारोह शनिवार, २२ मार्च १९५२ ई० से प्रारम्भ हुआ। श्री शंकराचार्य शिविर में श्री शंकराचार्य सेवक मंडल लखनऊ द्वारा श्री चरण-पादुका का सामूहिक पूजन हुआ पूजन के अन्त में जब आरती का समय आया तो उपस्थित

विशाल जन-समूह में जो जहाँ था वहीं उसने अपनी अपनी आरती जलाई। सहस्त्रों हाथ आरती की थालियाँ लिये हुये ऊपर उठ आये। मैदान भर में सहस्त्रों दीपशिखाएँ छोटेछोटे चक्करों में घूमने लगीं। जो जहाँ थे, वही खड़े हुये। सबने श्री चरणों की आरती उतारी। सैकड़ों घण्टे-घड़ियाल एक साथ बज रहे थे। ज्योतिर्मय दृश्य और शंख घंटों की तुमुलध्वनि से अन्तः-कारण गद्गद और प्रफुल्लित हो उठा। वायुमंडल सत्व प्रधान हो गया। सामूहिक प्रार्थना हुई। गुरुचरणों के प्रति भक्ति की एक हिलोर उठी और एक छोर से दूसरे छोर तक सबके सब उसमें बह उठे। भक्ति से मुग्ध प्रशान्त दिव्य वाता-वरण में भगवान श्री का उपदेश हुआ।

लखनऊ के इतिहास में यह प्रथम अवसर था जबकि नगर में किसी के नाम से सप्ताह मनाया गया हो। इस नगर के नाम (लक्ष्मणपुर) के साथ त्रेतायुग की स्मृति है और लाखों वर्ष पूर्व का इतिहास इसके पीछे है। विलासिता प्रेमी मुगल नवाबों के उत्कर्ष एवं पराभव की कहानी कहनेवाली अट्टालिकायें आज भी खड़ी हैं। ऐसे भौतिकता प्रधान नगर में धर्माचार्य के प्रति यह श्रद्धा धर्माचार्य के तप एवं उनकी महत्ता का द्योतक है।

प्रथम दिवस के कार्यक्रम में प्रातःकाल साढ़े चार बजे से ही भक्तगण अपने-अपने मुहल्लों में प्रभातफेरियों के लिये निकल पड़े। भगवान् के शिविर में भी भक्तगण अपनी-अपनी मोटरों में लाउडस्पीकर लगाये हुये अपने को तीन दलों में बाँट कर नगर के समस्त प्रधान मार्गों में प्रभातफेरी के लिये चल पड़े। साढ़े चार से साढ़े सात बजे तक भगवान् शंकरा-

चार्य तथा सनातन धर्म के जयघोषों से नगर गुंजायमान रहा। नागरिकों ने घरों से बाहर निकल-निकल कर प्रभात फेरियों के जयकारों में अपनी जयकारें मिलाकर उनका स्वागत किया। सभी ने भगवान शंकराचार्य के अतुलित प्रभाव का अनुभव किया।

सायंकाल भगवान् ने विधान सभा मार्ग से सभामण्डप के लिये प्रस्थान किया। बीसों मोटरें, जीपें, कारें पीले-पीले झंडे फहराती हुई शंकराचार्य तथा सनातन धर्म के जयघोष तथा वेद पाठ करती हुई आगे चलीं। भक्तों ने मार्ग में पचासों फाटक बनवाये और जगह-जगह आरती पूजन का प्रबन्ध किया। भगवान् की मोटर को घेरे हुये सहस्रों जन दौड़ते हुये चल रहे थे। सैकड़ों साइकिलें दौड़ा रहे थे। हर एक समय हर एक मनुष्य एक्सीडेन्ट के मुँह में था। किन्तु भगवान् की दया से किसी से किसी प्रकार की दुर्घटना नहीं हुई।

श्री चरणों के प्रति जनता का भक्तिभाव देखकर हृदय गद्गद हो उठा। बड़े-बड़े सुप्रतिष्ठित स्थूलकाय विद्वानों को शंख फूँकते भगवान् की मोटर के बगल में दौड़ते देखा गया। जिस मार्ग को पैंतालीस मिनट में पार करने का अनुमान था, उस मार्ग को पार करने में दो घण्टे पैंतालीस मिनट लग गये। साढ़े दस बजे रात जुलूस सभा-मण्डप में पहुँचा। स्वर्ण शिविका द्वारा भगवान् मंच पर पधारे। सिंहासन पर समासीन करा कर नगर को ओर से श्री चरणों की पादुकाओं का पूजन किया गया। अभिनन्दन पत्र समर्पित किये गये। निश्चित कार्यक्रम के उपरान्त भगवान् का अमृतमय उपदेश हुआ।

सप्ताह में प्रतिदिन प्रातःकाल ४।। बजे से ७।। वजे तक प्रभातफेरी, ६ से १२बजे तक पंचदेवों—भगवान् शंकर, विष्णु, देवी, सूर्य एवं गणेश—की आराधना ६।। से ७ बजे तक सभामंडप में भजन, कीर्तन, ७ से ६ तक सन्तों के उपदेश और अन्त में ६ बजे से भगवान् शंकराचार्य का अमृतोपदेश होता रहा। अन्तिम दिवस धन्य-धन्य जयकारों के गगनभेदी उद्घोषों के बीच उल्लासपूर्वक वातावरण में चिरस्मरणीय सप्ताह समाप्त हुआ। जिन सौभाग्यशाली सहृदय नेत्रों ने इसका आनन्द लिया, वे जीवन भर भूल नहीं सकेंगे। एक लाख से अधिक जनसमूह के मध्य ऐसा अद्वितीय उत्सव हुआ कि इसके सम्बन्ध में चर्चा करते हुये लोगों के प्रेमाश्रु छलक पड़ते, कण्ठ गद्‌गद हो जाता, वाणी धन्य-धन्य के अतिरिक्त अधिक कहने में अवरुद्ध हो जाती। इस प्रकार ३१ मार्च, १६५२ ई० को यह अभूतपूर्व श्री शंकराचार्य-सप्ताह-महोत्सव समाप्त हुआ।

इसके बाद महाराज श्री लखनऊ में लगभग एक महीना रहे। आपका निवासस्थान, शंकर-निवास (१६ विधान सभा मार्ग), उस समय वास्तव में शंकर-निवास हो गया। प्रातःकाल ६ बजे से लगभग २ बजे तक दर्शन व दीक्षा के लिये मेला लगा रहता। आश्रम के संन्यासी तथा ब्रचारियों से भी अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिये लोग उनके कमरों में भीड़ लगाये रहते। कितने ही भक्तगण प्रातःकाल से ही आश्रम के बगीचे में और कमरों में जिसको जहाँ सुबिधा दिखती बैठ कर जपध्यान करने के लक्ष्य से आ जाते और मध्याह्न में श्री चरण दर्शन के उपरान्त ही वापस जाते।

सायंकाल ५ बजे से ही भक्तों का आना आरम्भ हो जाता। आश्रम के विस्तृत मैदान में ऊँचे तख्त पर भगवान् शंकराचार्य का सिंहासन लगता बगल के तख्तों पर संन्यासी, महात्माओं के आसन लगते, सामने विद्वानों और ब्रह्मचारियों के आसन रहते और व्यवस्थित रूप से महिलाओं तथा पुरुषों के लिये बैठने का प्रबन्ध रहता। भगवान् का मंच फूल मालाओं से सजाया जाता। पर्व-तिथियों पर विशेष रूप से सजावट होती। इस प्रकार सभा का दृश्य अत्यन्त चित्ताकर्षक होता।

सायंकाल ६ बजे से भगवन्नाम संकीर्तन से उपदेश सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ होता। ६॥ बजे से संन्यासी महात्माओं के प्रवचन होते और ७ बजे श्री चरण पधारते। अपने कमरे से महाराज श्री चलकर ही आते और दोनों ओर से भक्तगण 'जय हो जय हो' की गम्भीर ध्वनि के साथ पुष्प वृष्टि करते। वैदिक पंडित स्वस्तिवाचन करते हुये आगे-आगे चलते। उसी समय मंच पर स्वस्तिवाचन का पाठ किया किया जाता। उपस्थित जन समूह खड़ा होकर जयकारों से आकाश गुंजायमान कर देता। श्री चरण सिंहासन पर विराजते और सभा पुलकित हो उठती। महाराज श्री का उपदेश लगभग सवा सात से आठ बजे तक नित्य होता था।

उपदेश के पश्चात् भगवान् अपने कमरे में आ जाते और सभामंच पर भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की सामूहिक आरती होती। उधर बाहर आरती होती इधर विशाल जनसमूह श्री चरण के पीछे-पीछे आकर हाल में निकट से दर्शन करने के लिये एकत्र हो जाता। लगभग एक घण्टा भगवान् को यहाँ दर्शन देने के लिये हाल में बैठना पड़ता। वहाँ से

उठकर महाराज श्री छत पर चले जाते । यहाँ भी एकान्त में उपासना आदि समझने वालों की संख्या इतनी अधिक हो जाती कि १२ बजे अर्द्धरात्रि तक भी सब लोगों को समय न मिल पाता और १२ बज जाने पर सब केवल दर्शन प्रणाम करके लौट जाते। इस प्रकार प्रातःकाल से १२ बजे अर्द्ध रात्रि तक आश्रम में मेला-सा लगा रहता।

इस विधि से लखनऊ में श्री महाराजजी ने डेढ़ मास तक निवास किया। तत्पश्चात् २१ अप्रैल, १६५२ ई० को सायं-काल देहरा एक्सप्रेस से देहरादून के लिये प्रस्थान किया। स्टेशन पर श्री चरण के दर्शन के लिये अपार जनता एकत्र हुई। लखनऊ स्टेशन का लगभग २ फर्लांग लम्बा प्लेटफार्म स्त्री-पुरुषों से खचाखच भर गया। नीचे रेल की लाइनों पर भी लोग हजारों की संख्या में श्री महाराज के दर्शन की एक झाँकी पाने की उत्सुकता में आशान्वित खड़े थे। लोगों के हृदय में श्रद्धा भक्ति थी। प्रेमाश्रुओं की उमंग से नेत्र झल-झला रहे थे। हर जगह भीड़ की अधिकता थी। हर व्यक्ति धक्कों से दबा जा रहा था। पर हर मुख से रह-रह कर निकल पड़ता था, 'भगवान् शंकराचार्य की जय हो।'

पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार श्री भगवान् एक सुस-ज्जित बंद कार द्वारा ६ बज कर ४५ मिनट पर स्टेशन पहुँचे प्लेटफार्म के बाहर ही श्री चरण को इस बंद मोटर से उतार कर एक सुसज्जित खुली मोटर पर आसीन किया गया जिससे स्टेशन पर श्री चरण के दर्शनार्थ आई हुई जनता को ठीक से दर्शन हो सके। यह कार प्लेटफार्म के अन्दर लाकर उस

जगह खड़ी की गई जहाँ एक ओर महिलाएँ और दूसरी ओर पुरुष अपनी-अपनी आरतियाँ लिये खड़े थे।

वैदिक विद्वानों ने स्वस्तिवाचन पाठ प्रारम्भ किया और सबों ने अपनी-अपनी आरतियाँ जलाईं। प्लेटफार्म भर में बीसों हजार आरतियाँ एक साथ जगमगा उठीं। हजारों शंख-घंटा-घड़ियाल की मंगल ध्वनि सहसा होने लगी। सैकड़ों हाथों में झंडे-झंडियाँ लहरा रहे थे। उस समय लखनऊ का चारबाग स्टेशन भव्य मन्दिर बन गया। भगवान् शंकराचार्य के जय घोषों से वातावरण गूँज उठा और भक्तों का हृदय गद्गद हो गया। नास्तिकों का मस्तक झुका और नागरिकों ने धर्म सम्राट को विदाई में अनन्त आरती जलाकर इस तथ्य का प्रदर्शन किया कि जो धर्म ज्योति आपने जलाई है वह अनन्त एवं अखण्ड है और शाश्वत काल तक जगमगाती रहेगी।

५० हजार से अधिक नर नारियों ने भक्ति-गद्गद हृदय और अश्रुपूरित नेत्रों से जगद्गुरु शंकराचार्य को अभूतपूर्व विदाई दी। भीड़ इतनी अधिक थी कि प्लेटफार्म पर तिल रखने की जगह न रहने की बात चरितार्थ हो गई। जिस डिब्बे से महाराज श्री देहरादून जाने वाले थे, वह फूल-मालाओं से बहुत ही सुन्दर ढंग से सजाया गया था। यद्यपि महाराज श्री के कार और रेल के डिब्बे में कुल ५ या ६ गज का ही फासला था पर भीड़ के कारण वहाँ तक पहुँचाने में १५-२० मिनट लग गये। जिस समय फूल-मालाओं से सजा हुआ डिब्बा महाराज जी को लेकर आगे बढ़ा, 'भगवान् शंकराचार्य की जय हो', के गगनभेदी स्वर से आकाश गूँज उठा। लखनऊ की जनता ने जिस भक्ति और श्रद्धा से महाराज

श्री को विदाई दी, वह लखनऊ के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी।

२२ अप्रैल, १६५२ को प्रातःकाल ६ वजे आप देहरादून पहुंचे। स्टेशन पर नागरिकों द्वारा भव्य स्वागत के पश्चात् आपको कसभंडा-हाउस, जो शहर से बाहर एक बड़े बगीचे के बीच स्थित है, ठहरया गया। भीड़ भाड़ से आये हुये महाराज श्री को यह शान्त-स्थान अनुकूल पड़ा। ऋषीकेश के काली-कमली-क्षेत्र के मंत्री, पं० श्रीदत्त शास्त्री द्वारा विशेष आग्रह किये जाने पर महाराज श्री, २५ अप्रैल को संध्या समय देहरादून से ऋषीकेश, रामनगर आये। मार्ग में जनता ने गाजे-बाजे के साथ श्रीचरण का भव्य स्वागत किया और वहाँ आत्म विज्ञान-भवन में "श्री शंकराचार्य निवास" में ठहरे। सत्संग भवन में दो दिन उपदेश हुआ और निश्चयानुसार २८ अप्रैल को कार द्वारा मंसूरी पधारे। मार्ग में मंसूरी की सीमा प्रारम्भ होते ही जहाँ-जहाँ नियमानुसार मोटर रुकती आई जनता स्वागत के लिये एकत्र मिली और सभी स्थानों पर सब ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति और उत्साह के साथ श्री चरण की आरती उतारी। टोल गेट एवं क्रीकेट गेट पर विशेषरूप से आरती पूजन का समारोह हुआ। लायब्रेरी (पुस्तकालय) के सामने हजारों की संख्या में नागरिकों ने घण्टा-घड़ियालों की तुमुल ध्वनि करते हुये "श्री शंकराचार्य" एवं सनातन धर्म के गगन भेदी जयकारों से भगवान् का स्वागत किया। कई राज्य परिवारों ने श्री चरण का पूजन किया, आरती उतारी और अपनी-अपनी श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया।

पर्वतीय धार्मिक जनता की प्रार्थनाओं पर महाराज श्री ने इस वर्ष अपना चातुर्मास्य-व्रत भी यहीं किया। यह महायज्ञ "प्रताप भवन" में हुआ, जो नगर के केन्द्र, मुहल्ला कुल्हड़ी में उँचाई पर स्थित है। यहाँ के नैसर्गिक दृश्य अत्यन्त मनोरम हैं। ७ जुलाई, १९५२ ई० को गुरुपूर्णिमामहोत्सव बड़े ही समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। श्रीचरण के पूजनार्थ प्रातः काल ९ से १२ बजे तक श्री चरण पादुका का पूजन अनेक भक्तों और श्रद्धालुओं ने किया। सायंकाल ५ से ९ बजे रात्रि तक सार्वजनिक सभा का कार्यक्रम बड़े ही आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ। लखनऊ, कलकत्ता, कानपुर, इटावा, प्रयाग, जबलपुर, काशी, देहरादून, बम्बई, दिल्ली, आदि प्रायः सभी बड़े-बड़े नगरों से आये हुये भक्तों ने अपने-अपने नगर की श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं और अनेक धार्मिक सामाजिक संस्थाओं की श्रद्धांजलियों के तार और पत्र पढ़कर सुनाये गये। अन्त में भगवान् का शुभाशीर्वादात्मक उपदेश हुआ।

चातुर्मास्य-व्रत के समय नित्य सायंकाल दर्शन होता था और सप्ताह में दो बार, गुरुवार और रविवार को सामूहिक उपदेश होते रहे। इस अवसर पर मंसूरी नगर निवासियों ने २३ सितम्बर १९५२ ई० को परम हर्ष व उत्साह के साथ "श्री शंकराचार्य दिवस" महोत्सव मनाया। मंसूरी जैसे विलासी शहर में जहाँ लोग भोग-विलास करने के लिये ही आते हैं धर्म का जयघोष हुआ। अपूर्व धार्मिक जागृति हुई। भगवान् शंकराचार्य की शोभायात्रा किताबघर से निकाली गई जुलूस गांधी चौक, लंढौर बाजार तथा सनातन धर्म मन्दिर होता हुआ हिमालय क्लब में समाप्त हुआ। जुलूस का आकार

बहुत विशाल था। सड़कों पर इतनी भीड़ हो गई कि सुगमता से चलना कठिन हो गया। घरों की छतों पर भीड़ जुलूस देखने के लिये एकत्र थी। विभिन्न स्थलों पर भगवान् का पूजन व आरती की गई। जुलूस २ बजे दिन से चलकर ६॥ बजे हिमालय क्लब में समाप्त हुआ। वहीं एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें अभिनन्दन-पत्र और श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित की गई। महोत्सव के अवसर पर नगर की सजावट हुई और नगर ही नहीं आस-पास की धार्मिक जनता का मंसूरी में सागर-सा उमड़ आया। लोगों की इतनी अपार भीड़ इतना वृहत् जुलूस मंसूरी नगर के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। मंसूरी जैसे शहर में श्रीचरणों के प्रति इतनी श्रद्धा एवं आस्तिकता महाराज श्री के व्यक्तित्व की महानता की विचित्र परिचय कराती थी।

८ अक्टूबर १९५२ ई० को लगभग २ बजे महाराज श्री का 'प्रताप भवन,' मंसूरी से कार द्वारा प्रस्थान हुआ। सहस्रों नर-नारी भगवान् की कार के आगे पीछे चल रहे थे वास्तव में मंसूरी की जनता की धार्मिक जागृति और श्री चरण के प्रति उनकी श्रद्धा का यह प्रत्यक्ष चित्रण था। आप- देहरादून पधारे और वहाँ आपने तीन दिन निवास किया। ११ ता० को ३॥ बजे सायंकाल सहारनपुर के लिये मोटर से यात्रा हुई। ५ बजे आप सहारनपुर पहुंच गये। सतयुग आश्रम से आपकी शोभायात्रा निकाली गई। जुलूस घंटाघर नेहरू मार्केट, सब्जीमण्डी, वामनजी रोड, चौक फौवारा, सराफा पुराना बाजार आदि प्रमुख स्थानों में होता हुआ रामलीला

भवन में समाप्त हुआ। सभी के मुख से यही कहते सुना गया, "आज तक कभी ऐसा भव्य जुलूस नहीं देखा।"

रामलीला भवन महाराज श्री का निवास स्थान एक भव्य मन्दिर बन गया। प्रातःकाल से ही भक्तजन हाथों में फूल-मालाएँ लिये कितने ही पूजन की सामग्री लिये भगवान् के दर्शन पूजन की अभिलाषा से आ जाते। नित्य पचासों दीक्षायें होतीं। शहर में यह आम चर्चा हो गई कि इतने उच्चकोटि के गुरु का इतने सुलभरूप में प्राप्त होना कठिन है। इसी भाव से भावित होकर दीक्षा के लिये जनसमूह आतुर हो उठा।

२२ अकटूबर १९५२ ई० को महाराज श्री प्रातः ८ बजे मोटर कार द्वारा प्रस्थान करके अम्बाला पधारे। धर्माचार्य के अम्बाला पदार्पण पर उनके स्वागतोपलक्ष में विराट् और भव्य शोभायात्रा निकाली गई। नागरिकों का उत्साह देखते ही बनता था। नगर की सभी धार्मिक सामाजिक संस्थाओं ने भाग लिया। ८॥ बजे सायंकाल में अभिनन्दन सभा का कार्यक्रम हुआ, जिसमें सनातन धर्म सभा, राष्ट्रीय-सेवक-संघ, ब्राह्मण सभा, हिन्दू महासभा की ओर से अभिनन्दन-पत्र समर्पित किये गये।

१३ नवम्बर को प्रातःकाल ५ बजे भगवान ने मोटर द्वारा अम्बाला से देहली के लिये प्रस्थान किया। १२ नवम्बर १९५२ ई० को ही अम्बाला निवासियों को यह ज्ञात हो गया था कि कल प्रातःकाल महाराज श्री उन्हें छोड़कर देहली जा रहे हैं। अतः ४ बजे से ही अम्बाला निवासी नर-नारी महाराज श्री के अंतिम दर्शन के लिये शिविर में एकत्रित होने

लगे। ५ बजते-बजते अपार जनसमूह इकट्ठा हो गया। परिणामस्वरूप अम्बाला पार करने में मोटर को दो घण्टे से अधिक समय लग गया। लोग प्रेम से विह्वल हो रहे थे। उनकी अश्रुपूर्ण आँखें उनके हृदय की आंतरिक वेदना का प्रदर्शन कर रही थीं। अम्बाला से चल कर देहली से १० मील पहिले, महाराज श्री ने दिन भर विश्राम किया और संध्या समय वहाँ से चलकर ७ बजे भारत की राजधानी दिल्ली पधारे। स्वागत हेतु नगर की धर्मप्राण जनता गांधी ग्राउंड में सागर की भांति अपार रूप धारण किये थी। सहस्रों नर-नारियों और नगर की प्रमुख धार्मिक-संस्थाओं ने महाराज श्री का तुमुल हर्ष ध्वनि एवं जय-जयकारों के साथ स्वागत किया और ११ गोलों से महाराज श्री की वन्दना की।

दिल्ली स्टेशन के समीप, क्वींस गार्डन में श्री शंकराचार्य शिविर निर्माण किया गया और वहीं महाराज श्री ने निवास किया। नगरनिवासियों, नगर की प्रमुख धार्मिक संस्थाओं एवं पंडित-मण्डली की ओर से स्वागतसभा हुई और भगवान् के चरण-कमलों में श्रद्धांजलियाँ एव अभिनन्दन पत्र अर्पित किये गये। स्वागताध्यक्ष ने अपने स्वागत भाषण में कहा, "महाराज श्री उत्तर भारत की धर्मपीठ के धर्म-सिंहासन पर समासीन होकर हमारा पथ-प्रदर्शन करने के लिये भगवान आदि शंकराचार्य के पवित्र उद्देश्य को सार्थक करने के लिये देश के कोने-कोने में जनता से निकट सम्पर्क स्थापित कर हमें इहलोक और परलोक का राजमार्ग बताने के लिये भ्रमण कर रहे हैं। आपकी सर्वाङ्गीण आदर्श-व्यवस्था देखकर सभी को ज्योतिर्मठ पर गौरव होने लगा है। आप

किसी रूप में रुपये पैसे स्वीकार नहीं करते और अपने दैवीं बल से ही इस प्रकार धर्म-प्रचार-यात्राएं कर रहे हैं। यह इतने बड़े स्वाभिमान और गौरव का विषय है कि उसका उल्लेख शब्दों में नहीं किया जा सकता। आपकी यह नीति हमें आपके स्वरूप में व्यास, वसिष्ठ और भारद्वाज आदि प्राचीन महर्षियों का दर्शन कराती है। आपका स्वर्णछत्र धर्म-छत्र है, जिसकी मंगलमयी शीतल छाया में आकर सभी लोग सुख शान्ति का अनुभव करते हैं। आपका स्वर्ण-सिंहासन धर्म सिंहासन है, जो धर्म और अधर्म के निर्णय का अन्तिम स्थान है। आपके सम्मुख रहने वाले दो स्वर्ण-दण्ड धर्म और नीति के प्रतीक हैं। दाहिनी ओर का धर्म-दण्ड है और बाँई ओर का नीतिदण्ड है। आपके सम्मुख चलनेवाली दो ज्योति (मशालें) वेद और शास्त्र के प्रतीक हैं। दाहिनी ओर की ज्योति, अपौरुषेय वेद का प्रतीक है और बाँई ओर की ज्योति शास्त्र का प्रतीक है। ये दो ज्योतियाँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि आप वेद और शास्त्र के प्रकाश से लोक का अज्ञानान्धकार मिटाने के लिये यहाँ पधारे हैं। भगवान् शंकराचार्य का देहली में शुभागमन हमारे नगर के इतिहास में स्वर्णिम घटना है।"

हजारों की संख्या में प्रतिदिन श्रद्धालु नागरिक जन भगवान् के दर्शन करते और प्रातःकाल का दर्शन बंद हो जाने पर भी सायंकाल तक शिविर में भीड़ बनी ही रहती। नागरिकों के लिये श्री शंकराचार्य-शिविर मेला-स्थल हो गया। सायंकाल ६॥ बजे से गांधी-ग्राउंड में उपदेश सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता। लगभग ७॥ बजे "हर हर महादेव

शम्भो काशी विश्वनाथ गंगे" की मधुर संकीर्तन ध्वनि के बीच श्री भगवान् शंकराचार्य की शिविका पंडाल में प्रवेश करती। शिविका से उतरकर महाराज श्री सिंहासन पर विराजते और छत्र, चमर, दण्ड आदि युक्त पार्षदों सहित झांकी को देखकर अपार जनसमूह का हृदय गद्गद हो उठता। लगभग ८ बजे नित्य भगवान् का उपदेश प्रारम्भ होता था। देहली के धार्मिक सत्संग में अपार भीड़ का होना प्रत्येक मनुष्य को संतुष्ट होकर जाना और नित्य श्रोताओं की संख्या बढ़ती जाना राजधानी के इतिहास की प्रथम घटना थी।

दिल्ली में अत्यधिक भीड़ होने के कारण महाराज श्री का विचार कुछ दिनों के लिये पूर्ण एकान्त सेवन करने का हो गया। २८ नवम्बर, १९५२ ई० को श्री भगवान् क्वीन्स गार्डन से उठकर ७ कैनिंग लेन, नई दिल्ली पधारे। यहाँ सायंकालीन सभाओं का कार्यक्रम स्थगित कर दिया, किन्तु नित्य सार्वजनिक दर्शन प्रातः १० से १२ बजे तक चलता रहा।

४ दिसम्बर को १२ बजे दिन में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद महाराज श्री दर्शन के लिये शिविर में आये। दर्शन किया श्रद्धांजलि समर्पण की और चरणोदक लिया। श्री भगवान् शंकराचार्य ने राष्ट्रपति से बातें करते हुये कहा, "पहिले नरेन्द्र लोग तपस्वियों और महर्षियों से अपने शासन कार्यों में परामर्श लिया करते थे। योग और तपस्या के कारण उनकी बुद्धि विमल होती थी। उन्हें लोभ और लोक वासना नहीं रहती थी और न उन्हें यही डर रहता कि राजा

इस बात से अप्रसन्न हो जायगा। वे जो परामर्श देते थे वह राजा और प्रजा दोनों के लिये हितकर होते थे। जब से महार्षियों का सम्पर्क राजाओं ने छोड़ा तभी से रसातल को चले गये।" यह कहते हुये आगे कहा, "आपका नौकर आपको क्या सलाह दे सकता है ? वह तो आप का ही नेत्र देखेगा। इसलिये प्रमुख सम्मति का काम महर्षियों से लेना चाहिये, जो भविष्य पर भी विचार कर सकते हैं। आप लोगों को यह भ्रम नहीं रहना चाहिये कि धर्मनीति राजनीति की विरोधिनी है। हमलोग जनता को सदाचारी बनने का उपदेश देते हैं। जनता जितनी सदाचारी होगी उतना ही शासनकार्य भी सुचारु रूप से चलेगा।" राष्ट्रपति महोदय बड़ी गम्भीरता से श्री शंकराचार्य महाराज की बातें सुनते रहे। महाराज श्री ने उपासना सम्बन्धी गम्भीर तथ्यों पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुये कहा "विद्यार्थी अपना पाठ्यक्रम स्वयं नहीं बना सकता। इसके लिए शिक्षाविद् की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार वास्तविक सुख-शान्ति का मार्ग समझने के लिये अनुभवी गुरु की आवश्यकता होती है।" इसी प्रसंग में अपने गुरुदेव के कुछ अनुभव सुनाते हुये श्री चरण ने संक्षेप में अपनी जीवनी पर भी कुछ प्रकाश डाला। बताया कि जब गुरु जी उत्तर काशी में मिले, तब सब से पहिले हमने यही कहा, "पहले हमें ऐसी विद्या दीजिये कि किसी के आगे हाथ न फैलाना पड़े बाद में हम परमार्थ समझेंगे। यह उन्हीं की कृपा का फल है कि प्रारम्भ से अभी तक हमने कभी किसी के सामने हाथ नहीं पसारा।"

डेढ़ घण्टे के वार्तालाप में शंकराचार्य महाराज ने राष्ट्रपति

अभिनव शंकराचार्य

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य
श्री स्वामी शांतानन्द सरस्वतीजी महाराज
ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम (हिमालय)

जी को व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के उत्थान के प्रधान तत्व तथा शासक और शासित के हित के मौलिक सिद्धान्तो का इस सुगमता से संक्षेप में दिग्दर्शन कराया कि राजेन्द्र बाबू मंत्रमुग्ध होकर सब सुनते रहे। राष्ट्रपति जी के कार्यक्रम के अनुसार महाराज श्री से बातचीत करते हुये निर्धारित समय से २५ मिनट अधिक हो गये, किन्तु जब महाराज श्री ने स्वतः उनके जाने की आज्ञा दी, तभी गये।

महाराज श्री का निवास इस समय कैनिंग लेन, नई दिल्ली में हो रहा था। एकान्त एवं विश्राम की दृष्टि से ही आप गांधी ग्राउंड से यहाँ चले आये थे। किन्तु थोड़े ही दिन लोगों का आना जाना कम रहा। धीरे-धीरे आगन्तुकों की संख्या बढ़ती ही गई। तब महाराज श्री ने फिर निर्णय किया कि चुपचाप स्थानान्तरण कर दिया जाय। इस लक्ष्य से, १६ दिसम्बर १६५२ ई० को, आप आगरा चले आये। यहाँ महाराज श्री का निवास सिविल लाइन्स में डा० भट्ट, प्रिंसिपल मेडिकल कालेज, की कोठी में हुआ।

यहाँ प्रायः शान्तिपूर्वक विश्राम रहा। केवल दर्शन प्रणाम ही सामूहिक रूप से चलता रहा। २२ जनवरी, १६५३ को आचार्यचरण आगरा से प्रस्थान करके २३ जनवरी को मध्याह्न में काशी पधारे और ब्रह्म निवास आश्रम सिद्धगिरि बाग में आपने निवास किया। आपका काशी पदार्पण भी प्रधानतः विश्राम की दृष्टि से ही हुआ था। इसलिये इस सम्बन्ध में जनता को सूचना नहीं दी गई थी फिर भी एक दूसरे से सुनकर काफी संख्या में दर्शनार्थ लोग आने लगे। जब देखा कि दर्शनार्थियों की भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती

तो यहाँ भी सार्वजनिक दर्शन का समय १० से १२ बजे दिन में नियत कर दिया। बाहर से आये हुये दर्शनार्थी-भक्तों सायंकाल भी दर्शन दिया करते थे।

इस प्रकार कुछ तक दिनों काशी में निवास करके रविवार ४ मई, १९५३ ई० की रात को भक्तों को दर्शन देकर ८॥ बजे वेदध्वनि के बीच काशी से कलकत्ता के लिये प्रस्थान किया। भक्तों की दौड़-धूप एवं भीड़-भाड़ से बचने के लिये यात्रा का समाचार गुप्त ही रखा गया। ब्रह्मनिवास आश्रम से बाहर निकलकर आप सुसज्जित पिक-अप पर समासीन हुये। गगन भेदी जयकारों के बीच महाराज श्री की गाड़ी मुगलसराय से लिये चल पड़ी। उसके पीछे भक्तों की गाड़ियाँ और लारियाँ भी चल दीं। यहाँ देहली मेल में एयर कंडीशन डिब्बा महाराज श्री के लिये सुरक्षित था। सूचना न होते हुये भी प्लेटफार्म पर बहुत भीड़ एकत्र हो गई। गाड़ी पर आसीन हो जाने पर भक्त मंडली एक-एक करके डिब्बे में जा जाकर महाराज श्री के दर्शन किये और १०॥ बजे रात्रि में गगनभेदी जयकारों के बीच महाराज श्री का मेल रवाना हुआ। यात्रा सानन्द सम्पन्न हुई और कलकत्ता में ५६ वालीगंज, सरकुलर रोड पर निवास हुआ।

ग्यारहवाँ अध्याय

महा-प्रयाण

इधर कुछ दिनों से महाराज श्री के स्वास्थ्य में शिथिलता आ गई थी। साधारण होमियोपैथिक औषधियाँ चल रहीं थीं। लाभ की गति मंद होने के कारण एल्योपैथी डाक्टरी उपचार आरम्भ किया गया। २० मई, १९५३ ई० को लगभग १ बजे डाक्टरों ने देखा और कहा "सब ठीक है। हृदय की गति ठीक है। नाड़ी बहुत अच्छी चल रही है।" डाक्टर के जाने के बाद महाराज श्री विश्राम करने लगे। लगभग १० मिनट बाद सहसा उन्होंने आँखें खोलीं और कहा "उठाओ।" उठकर बैठते ही शीघ्रता से अपने दोनों चरण सिकोड़ कर सुखासन की मुद्रा में बैठ गये और आँखें बंद कर लीं। इस प्रकार बैठे-बैठे एक बजकर १५ मिनट पर अपने पंचभौतिक शरीर को त्याग कर अपने स्वरूप में लीन हो गये। अध्यात्म का साकार विग्रह भूतल से उठ गया।

कलकत्ता नगर में यह समाचार तुरन्त ही बिजली की भाँति फैल गया। नागरिकजन महाराज श्री के अन्तिम दर्शनों के लिये समुद्र की भाँति उमड़ पड़े। जो जिस परिस्थिति में था, वह उसी परिस्थिति में अपने आप को भूलकर दौड़ पड़ा। टेलीफोन तार द्वारा देश के कोने-कोने में यह दुःखद समाचार तुरन्त पहुंच गया। दूर-दूर से वास्तविक समाचार और भावी कार्यक्रम जानने के लिये आश्रम में आने

वाले तारों व ट्रंककालों का ताँता लग गया। यथासम्भव उत्तर में महाराज श्री के पार्थिव शरीर को काशी ले जाने की सूचना दे दी गई। आल इंडिया रेडियो से भी महाराज श्री के महाप्रयाण एवं अन्तिम संस्कार के लिये उनके पार्थिक शरीर को काशो ले जाने का समाचार प्रसारित हुआ। सारे देश में शोक का वातावरण छा गया।

सभी प्रान्तों से धार्मिक-जन काशी चल पड़े—रेल से, मोटर से, हवाई जहाज से, जिसे जो भी साधन उपलब्ध हुआ, उसी साधन द्वारा काशी चल दिया—जो जिस अवस्था में था, बिना किसी तैयारी के वह उसी अवस्था में चल पड़ा। लखनऊ प्रयाग, जबलपुर, इटावा, कलकत्ता, पटना, बम्बई, नागपुर, इन्दौर, दिल्ली, आगरा आदि नगरों के हजारों नर-नारी भगवान् के पार्थिक शरीर की अन्तिम झाँकी पाने के लिये एवं अपनी-अपनो श्रद्धांजलि समर्पित करने लिये २० मई की रात से ही श्री ब्रह्मनिवास आश्रम काशी पहुँचने लगे।

वहाँ कलकत्ता में निवास-स्थान पर दोपहर से ही दर्शनार्थियों की भीड़ एकत्र होने लगी। संध्या होते-होते अपार जनसमूह इकट्ठा हो गया। ९।। बजे रात की गाड़ी से महाराज श्री का पार्थिव शरीर काशी ले जाया जाने लगा। संध्या समय एक ट्रक पर महाराज श्री को आसीन किया गया। बाजा, शंख, घंटा, घड़ियाल बजाता कीर्तन एवं जयकार करता हुआ जुलूस निवास स्थान से रवाना हुआ। मार्ग में इतनी अधिक भीड़ थी कि महाराज श्री की सवारी को स्टेशन पहुंचने में तीन घण्टे से अधिक लग गये। हावड़ा स्टेशन पर जनता को अन्तिम दर्शन देने के बाद, देहली एक्सप्रेस में महाराज श्री

का डिब्बा लगा दिया गया। डिब्बा पूर्णरूपेण सुसज्जित था। बीच में श्री महाराज का पुण्याकृत दिव्य शरीर रखा गया और उसके चारों ओर बर्फ रखी गई। पीछे भक्त मण्डली बैठ कर हरिकीर्तन करने लगी। ९-५० बजे रात्रि में गाड़ी हावड़ा से रवाना हुई। मार्ग भर भक्तमण्डली कीर्तन करती आई। दिन में लगभग ३ बजे गाड़ी मुगलसराँय पहुँची। मुगलसराँय से महाराज श्री के पार्थिव विग्रह को कार द्वारा काशी लाया गया और लगभग ४ बजे ब्रह्मनिवास आश्रम के प्राङ्गण में भक्तों के दर्शनार्थ सुशोभित किया गया। इस अन्तिम दर्शन से भक्तों के हृदय में, जो आघात पहुँचा, वह शब्दों द्वारा किसी भी प्रकार व्यक्त नहीं किया जा सकता। अपना-अपना हृदय थाम कर जो जैसे थे, स्तब्ध हो कर खड़े रह गये। तब फूल चढ़ाये और अन्तिम प्रणाम किये। फिर, जिस कमरे में महाराज जी दिन में विश्राम किया करते थे, उसी में ले जाकर स्नान कराया गया। पंडितमंडली द्वारा वेद पाठ के पश्चात् भगवान् का षोडशोपचार पूजन हुआ और तब अन्तिम यात्रा के लिये विशेष रूप से सुसज्जित विमान पर भगवान् को आसीन किया गया। विमान को एक सजे हुये ट्रक पर रखा गया और अन्तिम यात्रा आरम्भ हुई। आगे-आगे पुलिस बैंड, शहनाई बजा रही थी तत्पश्चात् कीर्तन-मंडली, पंडित वृन्द, संन्यासीगण भजन कीर्तन कर रहे थे। विमान के आगे-पीछे भक्तगण का अपार जन-समूह चल रहा था। आश्रम से कमच्छा गुदौलिया इत्यादि स्थानों से होता हुआ जुलूस दशाश्वमेध घाट पर पहुँचा। यहाँ पर लाखों जनता सीढ़ियों और सैकड़ों बजरों, नावों पर पहिले से ही प्रतीक्षा में उपस्थित थी।

गंगा के तट पर विमान रखकर वैदिक विधान से भगवान् का अभिषेक हुआ फिर एक बड़े बजरे पर संन्यासीगण भक्तमण्डली एवं विद्वन्मंडली के बीच विमान रखा गया और वह बजरा केदारेश्वर महादेव की ओर चल पड़ा। बजरे के अगल-बगल भक्तों के पृथक्-पृथक् बजरे और नावें चल रही थीं। केदारेश्वर महादेव के सामने केदारघाट पर पहुंच कर जल-प्रवाह की व्यवस्था की गई। यहाँ जल-प्रवाह के निमित्त विशेष रूप से निर्मित पत्थर का एक बड़ा संदूक दूसरी नाव पर लादा गया था। यहाँ पर महाराज श्री का विमान बजरे से उतार लिया गया और महाराज श्री का दिव्य विग्रह विमान से उतार कर उसमें रख दिया गया। साथ ही में महाराज श्री का कमंडलु और दण्ड भी रख कर संदूक में बंद कर दिया गया। तब नाव महाराज श्री के विग्रह को लिये हुये गंगा के मध्य की ओर चल पड़ी। अब अँधेरा हो गया था, अतः दूसरी नाव गैस बत्तियाँ लिये हुये उसके साथ-साथ चल पड़ी। साथ ही भक्तों की नावें अगल-बगल चलने लगीं। मध्य में पहुंचकर नाव रुकी और यहाँ पर यह संदूक गंगा जी में उतार दिया गया। ब्रह्मचारी महेश जी संदूक को लिये हुये गंगा में कूद गये और संदूक के धरातल पर पहुंच जाने पर अन्तिम प्रणाम करके बाहर आये। जलप्रवाह होते समय उपस्थित जनसमूह अपने शोकातिरेक को रोक न सका; आँखें डबडबा आईं, कण्ठ अवरुद्ध हो गये और मुँह से शब्द न निकला और फूट-फूट कर रो पड़े।

महाराज श्री यह कहा करते थे कि जगत् में कभी किसी का कार्य पूरा नहीं हुआ। यही परम्परा आपने निभाई

न जाने अपने तिरोधान का समय किस माप से इतना शीघ्र निश्चित कर लिया। पर अपने जोवन में, जो महान् आदर्श स्थापित कर गये, वे शताब्दियों तक जगत् का पथ प्रदर्शन करते रहेंगे। कितने महान् आदर्शपूर्ण सिद्धान्तों की व्यवस्था थी। कितना अलौकिक आदर्शमय उनके निजी जीवन का क्रम था। कितना प्रभावशाली चमत्कार उनके दर्शन एवं उनके शब्दों में था। कितना ओज तेज और हृदयग्राही मार्मिकता थी। उनकी निकटता में कितना आह्लाद था। उनसे संस्पृष्ट वायु में कीतनी रजो-तमोगुण-नाशिनी शक्ति थी। उनकी प्रत्यक्ष उपस्थिति, सामीप्य और प्रत्यक्षता में कीतनी गुण-ग्राहकता थी। इनका वर्णन स्थूल शब्दावली के क्षेत्र से ऊपर की बात है। किन्तु उनकी. अनन्तमहिमावान् सर्वोन्मुखी महत्ता, दिव्यता और कल्याणकारिता का अनुभव उनके दर्शन करने वाली कोटि-कोटि जनता ने स्वयं किया। सभी को अनुभव है कि उनकी स्मृति में कितनी महान् अद्भुत शक्ति थी।

अपनी किसी प्रकार की आपत्ति में भक्तजन उनका स्मरण करके आपदामुक्त होते रहे और होते रहेंगे। आज उनका प्रत्यक्ष दर्शन उपलब्ध नहीं है, किन्तु उनकी महान् दैवीशक्ति सदा हम सबका कल्याण करेगी और भक्तों का लौकिक-पारलौकिक सर्वप्रकार से कल्याण साधन करती रहेगी। भगवान् श्री का लीला विग्रह हम सब भक्त जनों के बीच से अन्तर्हित हो गया। इसलिये कि सभी अवतार और महान् विभूतियां आ आकर जाया करती रहे हैं। उन्होंने अपने लीलामय विग्रह को अंतर्हित कर लिया किन्तु अपनी कल्याणकारणी-शक्ति का तिरोधान नही किया। अपनी

सहज उदारता ओर सबके प्रति अपार वात्सल्य के कारण अपनी कल्याण-कारिणी-शक्ति जगत् में वैसी ही छोड़ गये हैं। उनकों ध्यान में अभी भी वही अगाध चमत्कारपूर्ण प्रवास है और आगे भीं रहेगा।

प्रभुचरणों ने केवल १२ वर्ष के अल्पकाल में ही ज्योंतिर्मठ का पुनरुद्धार कर दिया। उसे पावनतम धर्मपीठ बना दिया, जो नितान्त उच्छिन्न हो चुकी थीं। आदि जगद्गुरु शंकराचार्य की मान-मर्यादा से भारत की सम्पूर्ण जनता को अवगत करा दिया। अपनी पीठ को परम्परा संचालन का भी निश्चित् निर्देश अपने जोवनकाल में ही कर दिया था। १८ दिसम्बर १९५२ ई० को एक उत्तराधिकार पत्र कर लिखकर अपना उत्तराधिकारी निश्चित कर दिया था। ज्योतिर्मठ की परम्परा के संचालन के लिये उसमें आदेश निर्देश भो कर दिये थे और उसे प्रयाग में डिस्ट्रिक्ट रजिस्ट्रार के यहाँ सुरक्षित रखवा दिया था, जिससे ज्योतिर्मठ सदा सजीव रहे तथा ज्योंतिष्पीठ की पराम्परा अखण्ड रूप से चलती रहे।

महाराज श्री के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् तात्कालिक प्रबन्ध के लिये एक समिति बनाई गई, जिसका नाम "ज्योतिर्मठ अंतरिम प्रबंधक समिति" हुआ। इस समिति ने महाराज श्री के और्ध्वदैहिक संस्कार की पश्चात् भण्डारा आदि कार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् इसने समिति के सदस्यों, शिष्यों, विद्वानों, पंडितों, संन्यासियों एवं सभी दशनामी अखाड़ों और अन्य बहुत से प्रतिष्ठित लोगों की उपस्थिति में बड़ी धूमधाम से १२ जून १९५३ ई० के दिन शुभ मुहूर्त में १० वजकर ५२ मिनट पर ब्रह्मनिवास काशी आश्रम में अभिषेक सम्बन्धी विधि

वत पूजनादि कराकर ११ वजकर १४ मिनट पर ब्रह्मलीन महाराज श्री के उत्तराधिकारपत्र के अनुसार श्री स्वामो शान्ता नन्द सरस्वती जी महाराज को ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्यपद पर अभिषिक्त किया गया स्वामी शान्तानन्द जी महाराज ने ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री आचार्य चरण की पादुका का विधिवत पूजन किया। उन्हें अपने हृदय से लगाया और वैसे ही हृदय से लगाये हुये धर्मसिंहासन पर आरूढ़ हुये। संन्यासियों पंडितों और अखाड़ो आदि की ओर से विधिवत पूजन एवं वस्त्र भेट किये गये और अन्त में पीठ की ओर से अखाड़े के मंहतों को वस्त्रादि से समादृत किया गया।

बड़े आनन्द एवं हर्ष में पीठाधिरोहण कार्य सम्पन्न हुआ। दिनभर लखनऊ, जबलपुर, पटना, कलकत्ता, और प्रयाग आदि बहुत से स्थानों से अभिनव आचार्य चरण की सेवा में भक्तों की श्रद्धांजलियों के तार एवं टेलीफोन प्राप्त होते रहे जिनमें ब्रह्मलोन जगद्गुरु के उत्ताराधिकार पत्र के अनुसार नये पीठाधीश्वर पर हर्ष एवं उनके चरणों में श्रद्धांजलियाँ भेंट की गईं।

दिनांक १२ जून सन् १९५३ को अभिषेक कार्य सम्पन्न हो जाने के वाद जगद्गुरु शंकराचार्य श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्री स्वामी शान्तानन्द सरस्वती जी महाराज ने ब्रह्मलीन श्री शंकराचार्य जी महाराज के आदेशानुसार ज्योतिष्पीठ की मर्यादापूर्वक पीठ का समस्त कार्य संचालन कर रहे है। 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि भवन्ति महतापि इस उक्ति के अनुसार बीच-बीच में में पीठ के कार्य संचालन में बहुत से विघ्न भी उपस्थित हुये है। किन्तु उन विघ्नों से ज्योतिष्पीठ के संचा-

लन कार्य में कोई बाधा नहीं हो पायी। मर्यादापूर्वक धर्म प्रचार एवं पीठ कार्य भलीभाँति सम्पन्न हो रहा है।

जिन महापुरुष के कृपाप्रसाद से लगभग १६५ वर्ष से उच्छिन्न ज्योतिष्पीठ का पुनरुद्धार हुआ तथा जिनके पवित्र जीवन से धार्मिक जगत में स्वल्प समय के अन्तर्गत महान् आध्यात्मिक उपकार हुआ, हमलोग उनके उदात्त जीवन चरित्र का अध्ययन कर अपने जीवन को सफल बनावें। उनके मधुर उपदेशों का अनुसरण कर अपने भौतिक जीवन को सुखमय तथा जीवन को शान्तिमय बनायें। ब्रह्मलीन श्री गुरुदेव भगवान् के प्रति यही हमारी श्रद्धाञ्जलि होगी। इसी विचार से यह श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि चरित्रनायक के चरणारविन्द पर अर्पित की जा रही है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

॥ इति शुभम् भूयात्॥